राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

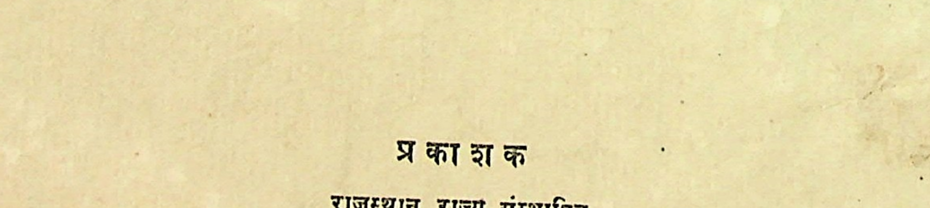
[सम्मान्य संचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ३८

पं० कृष्णमिश्र विरचिता

पदार्थरत्नमञ्जूषा

दिनांक 3-1-... के ...
प्रभारी अधिकारी
रा० प्रा० वि० प्र० ...



प्र का श क

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

[सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ३८

पं० कृष्णमिश्र विरचिता

पदार्थरत्नमञ्जूषा

प्रकाशक

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिल भारतीय तथा विशेषतः राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषानिबद्ध
विविध वाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावलि

प्रधान सम्पादक

पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

सम्मान्य संचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर;
ऑनरेरि मेम्बर ऑफ जर्मन ओरिएन्टल सोसाइटी, जर्मनी;
निवृत्त सम्मान्य नियामक (ऑनरेरि डायरेक्टर),
भारतीय विद्याभवन, बम्बई; प्रधान सम्पादक,
सिंघी जैन ग्रन्थमाला, इत्यादि

ग्रन्थाङ्क ३८

पं० कृष्णमिश्र विरचिता

पदार्थरत्नमञ्जूषा

प्रकाशक
राजस्थान राज्याज्ञानुसार
सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर (राजस्थान)

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पं० कृष्णमिश्र विरचिता

पदार्थरत्नमञ्जूषा

सम्पादक

पद्मश्री मुनि जिनविजय

प्रवेशक-लेखक

पं० श्री दलसुखभाई मालवणिया

अध्यक्ष – लालभाई दलपतभाई भारतीय-संस्कृति-विद्यामन्दिर, अहमदाबाद

प्रकाशनकर्त्ता

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

विक्रमाब्द २०२० | भारतराष्ट्रीय शकाब्द १८८५ | खिस्ताब्द १९६३

प्रथमावृत्ति ५०० | मूल्य ३.७५

मुद्रक–मूल पाठ और परिशिष्ट-स्वतंत्र भारत प्रेस, पटना।

मुखपृष्ठ, वक्तव्य और श्लोकानुक्रमणिका आदि के मुद्रक–
श्री हरिप्रसाद पारीक, साधना प्रेस, जोधपुर।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विषय - सूची

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रधान संपादकीय किंचित् वक्तव्य

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला के ३८वें मणि के रूप में यह छोटा-सा 'पदार्थ-रत्नमंजूषा' नामक प्रकरण-ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। यह प्रकरण-ग्रंथ जैसलमेर के एक भंडार में से आज से कोई बीस वर्ष पहले मुझे उपलब्ध हुआ था। इस ग्रन्थ की जो प्राचीन हस्तलिखित प्रति मुझे दृष्टिगोचर हुई वह बहुत सुवाच्य अक्षरों में लिखी हुई थी और उसका पाठ भी प्रायः शुद्ध था। किसी अध्ययनशील विद्वान् ने उस पर कुछ संशोधन आदि भी किया था। ग्रन्थ का कुछ आद्यन्त भाग पढ़ने से मुझे इस की रचना विशिष्ट प्रकार की मालूम दी और एक प्रकार से मेरे लिये अज्ञात-सी प्रतीत हुई। मैंने उस प्रति पर से अपने साथी लेखकों में से किसी एक द्वारा उसकी प्रतिलिपि करवा ली और उसी समय मेरे मन में हुआ कि कभी इस ग्रंथ को प्रकाशित कर दिया जाय। सन् १९५० ई० में राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला का कार्य मैंने प्रारम्भ किया तो मेरे मन में इस ग्रन्थ को प्रस्तुत ग्रन्थमाला द्वारा प्रगट करने का विचार हुआ और तदनुसार मैंने जैसलमेर में बनवाई हुई प्रतिलिपि को प्रेस कॉपी के रूप में ठीक कर के प्रेस में छपने को दे दिया। प्रारंभ में मैंने इस ग्रन्थ की कोई अन्य प्रतिलिपि, कहीं उपलब्ध हो तो उसको भी प्राप्त करने का कुछ प्रयत्न किया पर उसमें कुछ सफलता नहीं मिली और जो मात्र प्रतिलिपि मेरे पास थी उसी के आधार पर इस ग्रन्थ का मुद्रण-कार्य चालू किया गया। बाद में ज्ञात हुआ कि पूना के भांडारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट के ग्रन्थ-संग्रहों में काश्मीर की पुरानी शारदा-लिपि में लिखी हुई इस ग्रंथ की एक पोथी है। तब मैंने उसको मंगवाया और परिश्रमपूर्वक शारदा-लिपि को पढ़ कर इस ग्रन्थ का मीलान किया। मीलान करते समय मुझे कुछ पाठ-भेद भी दृष्टि-गोचर हुए परंतु शारदा-लिपि वाली वह पोथी अशुद्धिबहुल थी। इसलिये मैंने उसके पाठों का संग्रह करना निरुपयोगी समझा (शारदा लिपि वाली प्रति के अन्तिम पत्र का एक चित्र भी छपवा दिया गया जो इसके साथ संलग्न है) और जिस जैसलमेर वाली प्रति के आधार पर इसका मुद्रण किया गया वही इस रूप में प्रकाशित हो रहा है।

इस छोटे-से प्रकरण-ग्रन्थ को छपाने में प्रेस क विडंबना और विलंबता के कारण बहुत दिनों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पिछले कुछ महिनों से मेरी शारीरिक स्थिति दुर्वल एवं क्षीण होती जा रही है। मैं अब अधिक लिखने-पढ़ने की स्थिति से वंचित हो रहा हूँ। यह ग्रन्थ यूंही पड़ा न रह जाय इसलिए इसके विषय में एक छोटा-सा प्रवेशक लिख देने के लिए मैंने अपने विशिष्ट दर्शनशास्त्रज्ञ विद्वान् मित्र पं० श्रीदलसुख भाई से निवेदन किया और उन्होंने सहर्ष मेरे निवेदन को स्वीकार कर जो प्रवेशक लिख दिया है उसी के साथ आज यह ग्रन्थ विद्वानों के हाथों में उपस्थित हो रहा है। पं० श्रीमालवणियाजी, भारतीय दर्शन-शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। इन्होंने जैन, वौद्ध एवं हिन्दू दर्शन के अनेक मौलिक ग्रन्थों का संपादन किया है और कई वर्षों तक बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी के अन्तर्गत जैन-दर्शन-शास्त्र के मुख्य अध्यापक रूप में रहे हैं और अब अहमदावाद में नूतन प्रतिष्ठित 'लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या-मंदिर' के मुख्य संचालक हैं। जैसा कि 'प्रवेशक' में श्रीमालवणियाजी ने ग्रन्थ का सार-भाव बतलाया है, तदनुसार पाठकों को ज्ञात हो जायगा कि यह पदार्थ-रत्न-मंजूषा प्रकरण-ग्रन्थ वैशेषिक-दर्शन के तत्त्वों का वर्णन करने वाला है। हिन्दू दर्शन-शास्त्र की दृष्टि से वैशेषिकदर्शन एक प्रधान और महत्त्व का स्थान रखता है। दर्शन-शास्त्रों की गणना में छः दर्शन मुख्य गिने जाते हैं, परन्तु इस संख्या में नामों के वारे में अलग-अलग उल्लेख मिलते हैं। शायद सब से पहले जिस विद्वान् ने दर्शन की संख्या वतलाई वह जैन आचार्य हरिभद्रसूरि हैं। उन्होंने सव से पहले 'षड्दर्शन समुच्चय' नामक एक छोटा-सा प्रकरण-ग्रन्थ संस्कृत पद्य में लिखा और इसमें जैन, वौद्ध, सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय और मीमांसा इस प्रकार छः दर्शनों का तत्त्व निरूपण किया। फिर, अन्य विद्वानों ने अन्य रूप में भी कई दर्शनों का तत्त्व निरूपण किया। वर्त्तमान में लोक-प्रचलित विद्वानों में हिन्दू धर्म के जो अंगभूत छः दर्शन माने जाते हैं उनके नाम इस प्रकार हैं—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व-मीमांसा और उत्तरमीमांसा, इन वहुसम्मत छः हिन्दू दर्शनों में वैशेषिक दर्शन अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है और इसी वैशेषिक दर्शन का संक्षिप्त में परन्तु सारभूत शब्दों में यह 'पदार्थरत्नमंजूषा' ग्रन्थ परिचय दे रहा है। आशा है कि विद्वानों को 'राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला' का यह छोटा-सा मणि उपयुक्त मालूम देगा। इसका सारभूत 'प्रवेशक' लिख देने के लिए हम अपने सहृदय विद्वान् मित्र एवं आत्मीयजन श्रीमालवणियाजी के प्रति अपना हार्दिक आभार-भाव पुनः प्रकट करते हैं।

श्रावणी पूर्णिमा
संवत् २०२० वि०

मुनि जिनविजय

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रवेशक

पुरातत्त्वाचार्य गुरुवर्य श्रीमुनि जिनविजयजी की आज्ञा हुई कि मैं 'पदार्थ-रत्न-मंजूषा' का प्रवेशक लिख दूं। आचार्य श्री जिनविजयजी के संपर्क में मैं करीब ३५ वर्ष से हूं किन्तु इस प्रकार की आज्ञा आज प्रथम वार हुई है। इस आज्ञा को पाकर वड़भागी अपने को मानता किन्तु जिस परिस्थिति के वश यह आज्ञा मिली है वह ऐसा मानने नहीं देती।

पचास से भी अधिक वर्ष की साहित्य-साधना और वह भी अनवरत एक दिन के विश्राम के विना आचार्य श्री जिनविजयजी की है। इन्होंने शताधिक ग्रन्थों का सुसंपादन इस दीर्घकाल में किया है और आश्चर्य तो इस वात में है कि अनेक साथी होते हुए भी इन्होंने अपने साथियों को उनके द्वारा संपादित ग्रन्थों का कुछ भी कार्य कभी सौंपा नहीं। ग्रन्थ की खोज से लेकर कापी करना, अनेक प्रतों को खोज कर उनसे पाठान्तर लेना, प्रेस और कागज की व्यवस्था करना, प्रूफ देखना, वाइन्डिग की और उसकी सामग्री की और अन्ततः विक्री की भी व्रवस्था करना, ये सव कार्य सिंघी जैन ग्रन्थमाला हो या अन्य माला, अपने ग्रन्थों के लिए इन्होंने स्वयं ही किए हैं। और इन्हीं कार्यों में अपनी शारीरिक शक्ति और आँख की ज्योति का अंतिम विन्दु भी लगा दिया है। ग्रन्थमाला के मुख्य संपादक रूप में अन्य द्वारा संपादित ग्रन्थों का भी वहुत-सा कार्य ये ही निपटा लेते थे तो उनके द्वारा संपादित ग्रन्थों में तो अन्य की सहायता इन्होंने लेना कभी सोचा भी नहीं। किन्तु आज वे अस्वस्थ हैं, आँख की ज्योति मंद हो गई—ऐसी विवशता की दशा में यह आज्ञा हुई, वह केवल कर्त्तव्य का आनन्द देती है। मैं इसके लिए इनका अत्यन्त आभारी हूँ।

आचार्य श्रीजिनविजयजी ने कई भंडारों का निरीक्षण किया है और उनमें से जो ग्रन्थ महत्त्व के प्रतीत हुए हैं उनका उद्धार करने की दृष्टि से इन्होंने स्वयं सैकड़ों प्रतिलिपियाँ तैयार की हैं या अपने साथियों से करवाई हैं। ऐसी प्रतिलिपियों का ढेर इनके अपने संग्रह में है और कई पुस्तकें प्रेस में हैं—यह सव कार्य समाप्त हो—इसके पहले ही इनका स्वास्थ्य विगड़ा और इनकी उन ग्रन्थों के विषय में की गई नोंधें आज उस ढेर में से खोज कर निकालना इनके लिए कठिन हो गया है। ऐसी परिस्थिति में 'पदार्थ-रत्न-मंजूषा' नामक ग्रन्थ का विशेष विवरण देना इनके लिए कठिन हो गया है। अन्यथा अपनी आदत के और वहुमुखी विद्वत्ता के अनुसार ये जो कुछ इस ग्रन्थ के विषय में लिखते, वह विद्वानों के लिए अधिक उपादेय और संतोषप्रद होता, इसमें संदेह नहीं।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सिंघी जैन ग्रन्थमाला में सम्मिलित करने के लिए महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की खोज करने की दृष्टि से आचार्य श्रीजिनविजयजी ई० १९४२ में अनेक शारीरिक कष्टों को सहन कर के जैसलमेर पहुँचे थे। अपनी उस यात्रा का वर्णन ये बनारस में पूज्य पंडित श्रीसुखलालजी को लिखा करते थे। आज भी मुझे याद है कि उसमें अपने कष्टों को गौण रख कर नये-नये ग्रन्थों के लाभ से होने वाले आनन्द को ही विशेष रूप से ये अंकित करते थे। उसी यात्रा में जिन अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ हुईं उनमें से प्रस्तुत 'पदार्थ रत्न-मंजूषा' भी था। यह आचार्य श्रीजिनविजयजी से ज्ञात हुआ कि इस ग्रन्थ की जो प्रति मिली थी वह १५-१६ वीं शती की लिखी हुई थी। आज उसकी विशेष नोंध मिलना संभव नहीं है। यह भी ज्ञात हुआ है कि आचार्य श्री ने प्रेस में देने के बाद पूना से शारदा लिपि में लिखी गई एक प्रत का फोटो भी लिया था और उसके पाठांतर देने की इच्छा भी की थी किन्तु उस इच्छा का भी विवशता से संवरण करना पड़ा है। पूना की प्रत १६वीं शती की होने का उनका अंदाज है। इस परिस्थिति में 'पदार्थरत्नमंजूषा' का यह संस्करण केवल एक ही जैसलमेर की प्रत के आधार पर किया गया है।

हस्तप्रत में यत्र तत्र टिप्पणी भी मार्जिन में थी उसे भी यहां टिप्पणी के रूप में मुद्रित कर दिया है।

लेखक का समय निश्चित रूप से तो नहीं जाना जा सकता किन्तु 'न्यायकंदली' के बाद कभी यह ग्रन्थ लिखा गया है। इसकी प्रत जो मिली वह १५वीं शती के आसपास की है, अतएव लेखक का समय हम १४वीं शती के आसपास रख सकते हैं।

'पदार्थरत्नमंजूषा षट्पदार्थरूप मणियों से सुशोभित है' ऐसी बात यद्यपि उसके कर्त्ता कृष्णभट्ट ने अंत में (श्लोक ३१९) में कह दी है, किन्तु वस्तुतः स्वयं कृष्णभट्ट ने ही उद्देश-प्रकरण में भाव और अभाव दो प्रकार का पदार्थ इस ग्रन्थ में निरूपित किया है (श्लो० ११)। इससे यह ग्रन्थकार वैशेषिकों की सप्त-पदार्थ मानने की प्रणाली का अनुसरण करने वाला है, यह सिद्ध होता है। ग्रन्थकार अपना नाम प्रत्येक प्रकरण के अंत में कृष्ण ऐसा देते ही हैं और ग्रन्थ के अंत में भी दिया है। किन्तु उन्होंने अपना कुछ भी विशेष परिचय नहीं दिया है। केवल इतना ही जाना जाता है कि वे दुर्वादिओं के लिये पंचानन थे और शार्ङ्गधारितनुसंभूत अर्जुनराज के समय में श्रीरेणुका के प्रीत्यर्थं यह ग्रंथ बनाया है (श्लोक ३१९, ३२१)।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रशस्ति-वाक्य 'इति श्रीं महाराष्ट्रदेश्य श्रीकृष्णभट्टविरचिता पदार्थरत्न-मंजूषा समाप्ता ।' से पता चलता है कि ये कृष्णभट्ट महाराष्ट्र देश के थे ।

प्रारम्भ में आठ श्लोकों में कृष्णभट्ट ने जो मंगल किया है उससे दो बातें फलित होती हैं—एक तो यह कि लेखक को अलंकारशास्त्र का नैपुण्य प्राप्त था और दूसरी यह कि वे किसी एक देव के नहीं किन्तु अनेक देवताओं के भक्त थे । यह भी ज्ञात होता है कि संभवतः उनके गुरु का नाम मंचीश था जिनसे उन्होंने मीमांसा-दर्शन का अध्ययन किया था (श्लो० ८) ।

'पदार्थरत्नमंजूषा' ग्रन्थ में कुल ३२१ श्लोक हैं, उनमें से आदि-अंत के प्रासंगिक १०+३ निकाल दें तो कुल ३०८ श्लोक में ही संक्षेप में वैशेषिक दर्शन के सारभूत तत्त्वों का निरूपण सुंदर ढंग से कर दिया है । कहीं भी अनावश्यक विस्तार लेखक ने किया नहीं है और वैशेषिक दर्शन की आवश्यक कोई बात छोड़ी नहीं है ।

वैशेषिक दर्शन के कणादसूत्र और उसकी टीकाएँ अनेक हैं । किन्तु वे सब गद्य में हैं । सप्तपदार्थी ग्रन्थ भी गद्य में सूत्रात्मक ही है किन्तु वैशेषिक दर्शन का समग्र भाव से संक्षेप में निरूपण करने वाली पद्यात्मक कृति तो संभवतः यही 'पदार्थ-रत्नमंजूषा' एकमात्र उपलब्ध है । कारिकावली नव्यन्याय-युग में बनी । वह वैशेषिकों के सप्तपदार्थों का तो निरूपण करती हो है किन्तु प्रमाण-विवेचन में उसमें नैयायिकों के चार प्रमाणों को अपनाया गया है । अतएव सप्तपदार्थों को प्राधान्य दे कर वैशेषिक दर्शन का स्वतंत्र पद्यात्मक ग्रन्थ तो यही एकमात्र 'पदार्थरत्नमंजूषा' ही उपलब्ध है—ऐसा कहा जा सकता है ।

ग्रन्थ में पदार्थ को भाव-अभाव में विभक्त कर के प्रथम क्रमशः द्रव्यादि षड्भाव पदार्थ का विवेचन किया है (श्लो० ११-२८९) और अनन्तर चार प्रकार के अभाव का निरूपण (श्लो० २९०-२९६) कर के मोक्षस्वरूप के वर्णन (२९७-३१८) के साथ ग्रन्थ को समाप्त किया है ।

पृथ्वी, अप्, तेजः और वायु—इन चार द्रव्यों का परिचय दे कर के कहा है कि यहां तक कार्यद्रव्यचतुष्क का निर्णय किया गया, अब हम उसकी सृष्टि और संहार की प्रक्रिया कहते हैं (श्लो० ४०)—इस प्रकार प्रतिज्ञा कर के ग्रन्थकार ने वैशेषिक संमत सृष्टि और संहार का भी क्रमशः वर्णन (४१-४८) कर दिया है । तदनंतर आकाश, काल और दिक् का वर्णन (४९-५४) कर के आत्मा के विवेचन में आत्मा के दो प्रकार किये हैं—ईश और अनीश । इस प्रसंग में स्वतंत्र आत्मसिद्धि भी संक्षेप में करदी है (५५-६२) ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

द्रव्यों में अंतिम मन का निरूपण (६२-६५) समाप्त करके यह भी कह दिया कि तमः स्वतंत्र द्रव्य नहीं है, किन्तु आलोकभावरूप है, अथवा महीरूप है अतएव द्रव्य तो नव ही हैं (६६)।

इस प्रकार कृष्णभट्ट ने द्रव्यनामक पदार्थ का निरूपण कर के २४ प्रकार के गुणों का वर्णन किया है (६८-२३४)।

इस प्रसंग में विशेषतः पाकजोत्पत्तिप्रक्रिया द्रष्टव्य है। इसमें पिठरपाक का निषेध कर के पीलुपाक का समर्थन किया गया है (७६-८०) तथा संयोग नामक गुण का विवेचन भी द्रष्टव्य है (९५-१०३)। इसमें संयोग की उत्पत्ति और विनाश की प्रक्रिया का सुगम वर्णन है।

बुद्धि के विवेचन में भेदाग्रहरूप अख्याति, असत्ख्याति, आत्मख्याति और अनिर्वचनीय ख्यातियों का निराकरण कर के विपर्यय की स्थापना की गई है (१२०-१२४)। अनुमाननिरूपण में तर्क को अनुमानांग बता कर के उसके एकादश प्रकारों का विस्तृत वर्णन है जो जिज्ञासुओं के देखने योग्य है। इसमें खास बात यह है कि ईश्वरसिद्धि में जो अनुमान दिया जाता है उसके समर्थन में तर्क के इन ग्यारह प्रकारों का वर्णन है तथा तर्कदोषों का भी वर्णन है (१४२-१६६)।

यह भी ज्ञातव्य है कि प्रस्तुत लेखक ने शब्द को पृथक् प्रमाण न मान कर के अनुमान में ही उसका अन्तर्भाव कर दिया है (१८५)। उपमान (१८६), अर्थापत्ति (१८८), संभव (१८९), अभाव (१९०) और ऐतिह्य (१९१)। इन सभी प्रमाणों का कणादवर्णित प्रत्यक्ष और अनुमान में ही यथायोग्य समावेश कर लिया है।

प्रामाण्य की स्वतः सिद्धि का निराकरण (१९२-१९४) कर के प्रमाणता—यह स्वभाव है किन्तु शक्तिरूप नहीं—इस मान्यता को दृढ़ करने के लिये मीमांसकसंमत पृथक् शक्ति का निराकरण युक्तिपूर्वक किया गया है (१९६-१९८)

शब्दगुण के वर्णन में स्फोटरूपता का निराकरण किया गया है (२२५-२२६) तथा शब्द की अनित्यता स्थापित कर के वेदापौरुषेयता का भी खंडन किया है (२२७-२२९)।

कर्मनिरूपण में (२३५-२५३) कर्म की सिद्धि में प्रमाण (२३५-२३८) देकर के उसके भेदों की संख्या पांच ही है, न्यूनाधिक नहीं—इसका समर्थन है।

सामान्यविवरण में (२५४-२७१) सामान्य के विषय में अपोहवाद आदि मतों का खंडन कर के जाति की स्थापना की गई है। जातिबाधकों का संग्रहश्लोक इस प्रकार है।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

'व्यक्त्यैक्यतुल्यते तद्वदनवस्थितिसंकरौ ।
सम्बन्धशून्यता रूपहानिरित्येष संग्रहः ॥' (२६५)

और व्यक्त्यैक्य आदि होने पर जाति क्यों नहीं मानी जाय—इसको सोदाहरण स्पष्ट किया गया है (२६६-२६९) ।

विशेष पदार्थ का वर्णन अति संक्षिप्त है, मात्र ६ श्लोकों में उसका विवरण समाप्त है (२७२-२७७) ।

समवाय (२७९-२८८) और अभाव (२९०-२९५) भी संक्षिप्त रूप से ही निरूपित हैं ।

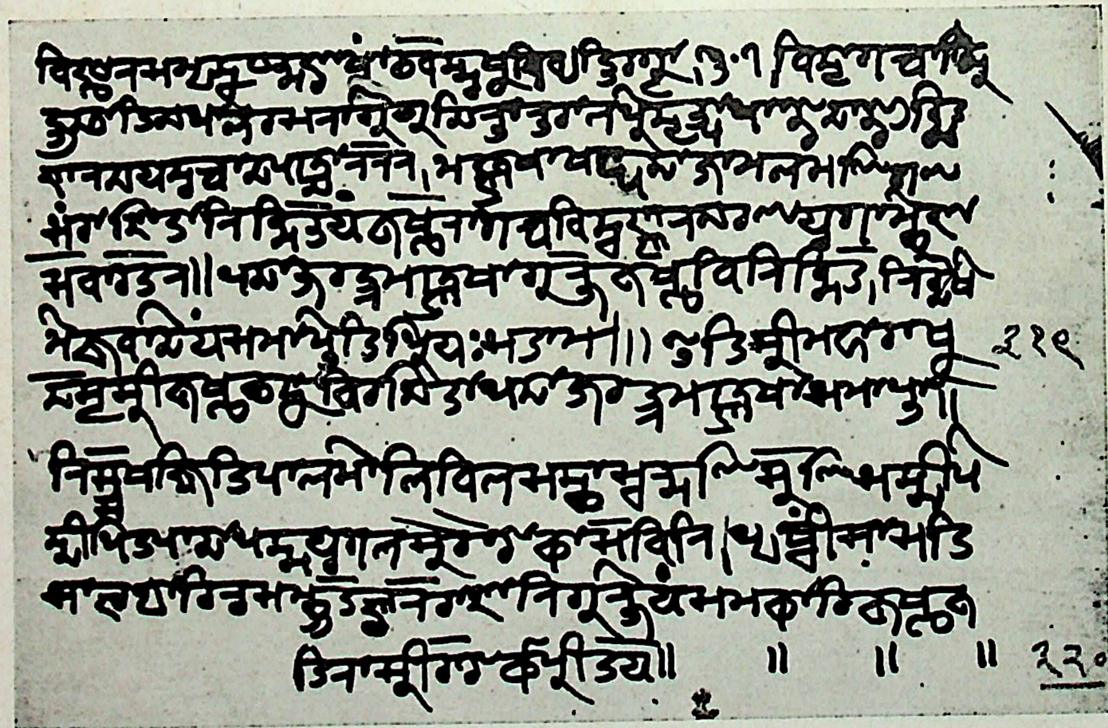
अंत में मोक्षस्वरूप की चर्चा ग्रन्थ के अनुपात में कुछ विस्तृत ही है, ऐसा कहा जा सकता है (२९७-३१८) । इसमें मोक्षविषयक अन्यमतों का निराकरण कर के आत्मा के बुद्धि आदि नव गुणों के उच्छेद को ही मोक्ष स्थापित किया है और इस स्वमत का समर्थन 'अशरीरं वा वसन्तं' (३१३) इत्यादि आगम से भी होता है और उस आगम का भी प्रामाण्य, कार्य अर्थ में ही न हो कर सिद्ध अर्थ में भी होता है, यह बताया गया है ।

यद्यपि यह ग्रन्थ संक्षिप्त है, तथापि ऊपर के वर्णन से यह ज्ञात होगा कि वैशेषिकदर्शन की सभी ज्ञातव्य चर्चा को इसमें स्थान अवश्य मिला है । अतएव वैशेषिकदर्शन का ज्ञान कराने का यह ग्रन्थ एक अच्छा साधन उपस्थित करता है, यह निःसंदेह है ।

अहमदाबाद **—दलसुख मालवणिया**
दिनांक १०–६–६३

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy



पदार्थरत्नमञ्जूषाकी शारदालिपिवाली प्रतिका अन्तिम पत्र

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

श्रीकृष्ण-मिश्र-विरचिता

पदार्थरत्नमञ्जूषा

प्रथम - द्रव्याख्यपदार्थवर्णनम् ।

श्रीसर्व्वज्ञाय नमः।

नमामः संसारोरुमिहिरदुरन्त[1]ातपहरं
मुहुर्ब्रह्माद्युद्यद्वदनकुमुदोल्लासचतुरम् ।
घनस्वान्त[2]ध्वान्तक्षपणनिपुणं चारुकिरणं
नृपं[3]चास्यश्रीमच्चरणनखराकेश[4]मरुणम् ॥१॥

यत्र खेलति रमारमणीयो[1] यत्र चेन्दुरुदितो मुदिताशः[2] ।
यत्र भूति[3]रुदभूद[4]भिवृद्धं नौमि तं हरपयोधिमगाधम् ॥२॥

पुण्यपर्ण्णकलिताऽतिसुललिता शुद्धबोधकुसुमा हृदि परमा ।
सूक्तिविस्तृतिफला[1] मम भवताद् विघ्नराजकरुणाऽमृतलतिका ॥३॥

मञ्जीराद्यैर्भूषणैर्भूषितायाः शश्व[1]द्विश्वेशानकैः[2] सेवितायाः ।
वन्दे वन्द्यं वेदवृन्दोदितायाः पादद्वन्द्वं रेणुकादेवतायाः ॥४॥

अङ्घ्रियुगं परिघं दुरितानां चारुनखं सुमुखं[1] सुकृतानाम् ।
साधु गृणामि[2] कणादमुनीनां भूधरजापतिजातमतीनाम्[3] ॥५॥

(१) १. अपरिमित । २. चेतसि । ३. नृसिंहम् । ४. चन्द्रम् ।
(२) १. कृष्णः । २. प्रीणितदिग् । ३. भस्म वा । ४. प्रकटीबभूव ।
(३) १. सूक्तिविस्तारप्रयोजना ।
(४) १. अनवरतं । २. जगत्पतिभिः ।
(५) १. सन्मुखं । २. स्तौमि । ३. ईश्वरोत्पन्नजातबुद्धीनाम् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

भरत[1]हृदयविज्ञं नील[2]सुग्रीवभृत्यम्, हरि[3]बलकृतपुःखाम्भोधिसत्सेतुबन्धम् ।
हत[4]खररिपुवर्गं सीतयालंकृताङ्कम्, गुरुवरमहमीशं नौमि रामाभिधानम्॥६॥

स्वज्ञानाम्बुधिसंप्लुते जगति योऽनन्ताख्यपर्यङ्किका-
मध्ये क्रीडति यत्पदाब्जयुगलं लक्ष्म्या समासेव्यते ।
यस्यान्तः[1]प्रतिभाति सर्वजगदावासो[2] यतो[3] ब्रह्मणः
प्रादुर्भूति[4]रजस्र[5]मस्तकलिलं[6] तन्नौमि नारायणम् ॥७॥

यत्पादाम्भोजाऽऽसेवातः प्राप्तोऽहं मीमांसासारम् ।
मंचीशं तं वन्दे नाथं भ्रान्त्यज्ञानादिध्वंसार्थम् ॥८॥

मम सन्निकषोपलके हि भवेद् विशदं मतिशुद्धिपरीक्षणकम् ।
इति संकथयाम्यहमेतदिह क्षमतामभियन्तु[1] जनाः सुजनाः ॥९॥

अपास्तविस्तरां बालबोधवृद्धिप्रसाधिनीम् ।
पदार्थरत्नमञ्जूषां कुर्व्वे सर्व्वेष्टदायिनीम् ॥१०॥

शब्दवाच्यः पदार्थः स्याद् द्विधाऽसौ संप्रकीर्त्तितः ।
भावोऽभावश्च षोढेष्टो भावो भावविशारदैः ॥११॥

अस्तीति विधिधीर्वेद्यो[1] भावः प्रोक्तो मनीषिभिः ।
द्रव्यं गुणस्तथा कर्म्म सामान्यं सविशेषकम् ॥१२॥

समवाय इति प्राहुर्भेदान् भावस्य सूरयः ।
कारणं समवायि स्याद् द्रव्यं तन्नवधा मतम् ॥१३॥

भूजलाग्न्यनिलाकाश-काल-काष्ठा[1]त्महृद्[2]भिदा ।
गन्धाढ्या* भूः शुक्लपीतहरिता[3]ऽरुणमेचकम्[4] ॥१४॥

(६) १. भरतशास्त्रं श्रीरामभ्राता च । २. नीलसुग्रीव इश्वरस्तस्य भृत्यस्तम्; नीलसुग्रीवौ वानरौ भृत्यौ यस्य सः तम् । ३. कृष्णबलेन वानरबलेन वा । ४. हतो निर्जितः खररिपूणां कामादीनां वर्गो येन स तं, अथवा हतः खरो नाम राक्षसः स एव रिपुः तस्य वर्गो येन स तम् ।

(७) १. मध्ये । २. स्थितिः । ३. नारायणात् । ४. उत्पत्तिः । ५. निरन्तरं । ६. निष्पापं ।

(९) १. प्राप्नुवन्तु ।

(१२) १. ज्ञेयः ।

(१४) १. दिक् । २. मनः । *गन्धवतीत्यर्थः । ३. रक्तं । ४. कृष्णं ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कडारं[1] चित्रमित्येवं रूपं सप्तविधं पुनः ।
कटुतिक्तकषायाम्लमधुरक्षार[2]भेदतः ॥१५॥
षोढा रसो द्विधा गन्धः सुरभी[1]तरभेदतः ।
स्पर्शस्तु पाकजोऽनुष्णाशीतो नानात्वं[2]मीरितः ॥१६॥
संख्या मानं द्विधाऽणुत्व-मध्यमत्वविभागतः ।
पृथक्त्वं योगभागौ च परत्वं चेतरत् तथा[1] ॥१७॥
गुरुत्वं हैतुकं[1] चैव द्रवत्वं संस्कृतिस्त्वरा[2] ।
स्थितस्थापक इत्येते चतुर्दश गुणा भुवः ॥१८॥
नित्याऽनित्येति सा द्वेधा नित्याऽणुः परिकीर्त्तिता ।
मूर्त्तोऽवयवहीनश्चेदेतत् स्यादणुलक्षणम् ॥१९॥
पटकुम्भस्थजातित्वाद् भूतं नित्यस्थमिष्यताम् ।
सत्तावदित्यणोः सिद्धिरनित्या त्रिविधा मता ॥२०॥
विषयेन्द्रियदेहाख्या योनिजेतरभे[1]दतः ।
द्वेधाऽन्त्या योनिजा त्वस्मदादीनामितरा[2] द्विधा ॥२१॥
धर्मजाधर्मजत्वेन मुनिक्षुद्र[1]शरीरिणाम् ।
न पाञ्च[2]भौतिको देहोऽप्रत्यक्षत्वादिदोषतः ॥२२॥
चित्ररूपरसस्पर्शः स्याच्च हेत्वनुसारतः[1] ।
परिमाणविभेदेन बालवृद्धादिभेदतः ॥२३॥
भिन्नो[1] देहो यथा कुम्भकरकोदञ्चनादिकम् ।
स्याद् घ्राणमिन्द्रियं तच्च गन्धधी[2]तोऽनुमीयते ॥२४॥

(१५) १. कपिलं । २. लवण।
(१६) १. अमुरभिश्च । २. पृथिव्यां बहुसंख्या उक्ता ।
(१७) १. अपरत्वं ।
(१८) १. अग्निसंयोगोत्पाद्यं । २. वेगः ।
(२१) १. अयोनिजा । २. अयोद्भिजा ।
(२२) १. मशकः । २. पंचभूतारब्धो देह इति चार्वाक् ।
(२३) १. पृथिव्यादिसमवायिकारणानुसारतः ।
(२४) १. अवस्थाभेदेनापि शरीरभेदो न भवतीति परे वदन्ति । २. तत्र करणजन्या कार्यधीत्वात् । रूपा···वत् इत्यनुमानेन घ्राणेन्द्रियसिद्धिः परिशेषात् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मृदादिर्विषयोऽभीष्ट इति प्रकरणं भुवः ।
रसवत्त्वादिसारूप्याद् वक्ष्यामो जललक्षणम् ॥२५॥
पाथस्तु[१] स्नेहवद्रूपं शुक्लं स्यान्मधुरो रसः ।
स्पर्शः शीतो गुरुत्वान्ताः संख्याद्याः पूर्ववन्मताः ॥२६॥
अहैतुकं[१] द्रवत्वं च संस्कारो वेग इष्यते ।
गुणाश्चतुर्दशैते स्युरम्भसस्तद् द्विधा कुवत् ॥२७॥
अणु नित्यमनित्यं तु त्रिधा देहादिभेदतः[१] ।
देहोऽयोनिज एवास्य श्रुतिगम्यः प्रचेतसः[२] ॥२८॥
लोके त्विन्द्रियमस्येष्टं रसनं रसधीप्रथम्[१] ।
विषयः सरिदादिः स्यादित्यापः सन्निरूपिताः ॥२९॥
तेजो गुरुत्ववद्रूपि शुक्लं स्वाऽन्य[१]प्रकाशकम् ।
रूपमुष्णो भवेत् स्पर्शः संख्याद्या द्रवतो[२]त्तरा ॥३०॥
क्षितिवद्वेग एवेष्टः संस्कारस्तद् द्विधाऽम्बुवत् ।
पराणु[१]लक्षणं नित्यमनित्यं विग्रहादिकम् ॥३१॥
वर्ष्मा[१]ऽयोनिजमादित्यलोके रूपमतिप्रथम्[२] ।
इन्द्रियं चक्षुरग्नी[३]न्दु[४]हेम[५]जाठर[६]संज्ञकः ॥३२॥
विषयो रविदीप[१]स्थजातित्वाद् द्रव्यता[२] यथा ।
तेजस्त्वं[३] हेमवृत्ति[४] स्याद्धेम्नस्तैजसतेदृशी ॥३३॥
अग्नेरपत्यं प्रथम[१]मित्यादि श्रुतितोऽपि च ।
इदं तेजः समुद्दिष्टं वक्ष्यामोऽथ समीरणम् ॥३४॥

(२६) १. यत् स्नेहवत् तन् पाथ इति लक्षणकीर्त्तनम् ।
(२७) १. अग्निसंयोगानुत्पाद्यं ।
(२८) १. आदिशब्देन इंद्रियविषयौ । २. वरुणस्य लोके ।
(२९) १. रसबुद्धिप्रसिद्धमित्यर्थः ।
(३०) १. नैमित्तिकी । २.······
(३१) १. परमागुलक्षणम् ।
(३२) १. शरीरं । २. रूपबुद्ध्यनुमेयं । ३. भौमं । ४. दिव्यं । ५. आकरजं । ६. औदर्यं ।
(३३) १. साधनं । २. दृष्टान्तः । ३. पक्षः । ४. साध्यं ।
(३४) १. सुवर्णमिति शेषः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नीरूपः स्पर्शवान् वायुः स्पर्शोऽस्यानुष्णशीतकः[1] ।
अपाकजश्च संख्याद्या अपरत्वोत्तरा गुणाः ॥३५॥
पूर्ववन्नवमो वेगो द्वैविध्यं चापि पूर्ववत् ।
नित्योऽणुरितरः[1] प्राणविषयेन्द्रियदेहभाक् ॥३६॥
अयोनिजं मरुल्लोके वर्ष्मस्पर्शनमिन्द्रियम् ।
स्पर्शबुद्ध्यनुमेयं स्याद् विषयस्तु महानिलः ॥३७॥
स च न स्पर्शनाध्यक्षो[1] वियदात्मदिगादिवत् ।
नीरूपद्रव्य[2]रूपत्वादिति हेतोः समीरणः ॥३८॥
प्राणोऽपानस्तथा व्यान उदानोऽथ समानकः ।
एकोऽपि स क्रियाभेदात् प्राणः पञ्चविधो मतः ॥३९॥
कार्यद्रव्यचतुष्कोऽयं निरणायि[1] प्रयत्नतः ।
अधुना सृष्टि-संहारविधिमस्या[2]ऽभिदध्महे ॥४०॥
क्षुब्धश्रीमन्नृपञ्चा[1]स्यजगत्संहरणेच्छया ।
प्राण्यदृष्टादणुष्वाद्यं कर्म संजायते ततः ॥४१॥
भागस्ततो योगना[1]शस्तस्माद् द्रव्यं विनश्यति ।
ततश्चन्द्रललामस्य सिसृक्षातः क्रियाऽणुषु ॥४२॥
ततो यो[1]गस्ततो भूत[2]भौतिकोत्पत्तिरीरिता ।
अणुद्वयेन द्व्यणुकं तैः[3]स्त्रिभिस्त्र्यणुकं भवेत् ॥४३॥
इत्यादिक्रमतः सृष्टिरङ्गीकार्या विचक्षणैः ।
अणोरारम्भकत्वं चेदेकस्यानाशिता[1] भवेत् ॥४४॥

(३५) १. उष्णश्च शीतकश्च उष्णशीतकौ, ताभ्याम् अन्यः ।
(३६) १. अनित्यः ।
(३८) १. स्पर्शने प्रत्यक्षो वायुरिति भावः । २. घटादिव्युदासार्थं नीरूपपदं स्पर्शादिव्युदासार्थं द्रव्यपदम् ।
(४०) १. निर्णीतः । २. कार्यद्रव्यचतुष्कस्य
(४१) १. क्षोभवतः परमेश्वरस्य संजिघृक्षया प्राण्यधर्मवशात्परमाणुषु प्रथमतः क्रियोत्पद्यते ।
(४२) १. असमवायिकारणनाशः ।
(४३) १. असमवायिकारणं । २. भूता उत्पत्तिमंतो ये भौतिकाः पृथव्यप्तेजवायवस्तेषामुत्पत्तिः । ३. द्व्यणुकैः ।
(४४) १. अनित्यता ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कार्यस्य सततत्वं[1] चापेक्षणीयार्थ[2]हानितः ।
बहूनां[3] च न कार्यस्य[4] महतः[5] कार्यतो जनिः[6] ॥४५॥
दृष्टा घटादिषु ततो द्वयोरण्वोः समुद्भवेत् ।
द्वयणुकं तैश्च बहुभिः कार्यमारभ्यते महत् ॥४६॥
न द्वाभ्यां[1] कारणारूढस्थौल्यबाहुल्यहानितः ।
अन्त्यावयविनः कार्यमणु[2] चैवं प्रसज्यते ॥४७॥
द्वयणुकादिक्रमेणातः कार्योत्पत्तिरितीदृशी[1] ।
लयोत्पत्तिस्थितिः प्रोक्ताऽधुना गगनमुच्यते ॥४८॥
आकाशं शब्दवत्तस्य शब्दैकत्वादयो गुणाः ।
भागान्ताः षडजं तच्च कारणत्रयहानितः ॥४९॥
नित्यं च नाशहेतूनामभावाद् विभु चेरितम् ।
नीरूपद्रव्यताऽतश्चाचाक्षुषत्वं विहायसः ॥५०॥
ततः शब्दैकमेयं स्यादित्यम्बरपरीक्षणम् ।
अथाभिदध्महे कालकलनाम[1]लमादृताः ॥५१॥
कालश्चिरादिधीहेतुः संख्याद्याः पञ्च तद्गुणाः ।
आकाशवल्लयो[1]दर्ककलवादिव्यवहारकृत् ॥५२॥
निरंश[1]द्रव्यरूपत्वादजो नित्यश्च गीयते ।
नानात्वौ[2]पाधिकी तस्येत्येषा कालनिरूपणा ॥५३॥

(४५) १. सर्व्वदोत्पत्तित्वं । २. परमाण्वन्तरापेक्षाभावादित्यर्थः । ३. परमाणूनाम् । ४. अणुकादिलक्षणस्य महत्कार्यस्य कार्यता उत्पत्तिमतः पदार्थात् । ५. समवायिकारणस्य नित्यत्वात् असमवायिकारणस्य चाभावात् । ६. उत्पत्तिः ।

(४७) १. द्वयणुकाभ्यां च अणुकमारभ्येत तर्हि द्वयणुकनिष्ठमेव परिमाणं त्र्यणुकेऽपि स्यात् । अणुपरिमाणस्य द्वयणुकादिनिष्ठस्यासमवायिकारणत्वानंगीकारात् । बहुत्वसंख्यायाश्चाभावात् । अतः द्वयणुकनिष्ठमेव परिमाणं त्र्यणुकेऽपि स्यात् । न च तथा अतस्त्र्यणुभिर्द्वयणुकैस्त्र्यणुकमारभ्यत इति सिद्धान्तः । त्र्यणुकनिष्ठस्य मध्यमपरिमाणस्य च त्रिद्वयणुकनिष्ठा बहुत्वसंख्या असमवायिकारणं संख्यापरिमाणप्रचयासमवायिकारणं परिमाणमिति भाष्यकारनिकरैरुररीकृतत्वात् । २. अणुपरिमाणं स्यात् ।

(४८) १. संहारसृष्टिप्रकारः ।

(५१) १. कालस्वरूपः ।

(५२) १. विनाशोत्पत्तिस्थितिव्यवहारहेतुश्चेत्यर्थः ।

(५३) १. निरवयवः । २. भिन्नता ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

दिक् पूर्वापरधीगम्या कालवद् गुणभूषिता ।
तन्नाना[1]तेनसंचारो[2]पाधिकेति दिगीरिता ॥५४॥
आत्मा तु चेतनो द्वेधा स्यादीशानीशभेदतः ।
अनीशश्च[1] न देहः[2] स्यात् पार्थिवत्वाद्[3] घटादिवत् ॥५५॥
इन्द्रियाणि च नैवाऽऽत्मा भौतिकत्वात् पटादिवत् ।
अणुत्वान्न मनस्तच्च[1] मनसः साधयिष्यते ॥५६॥
अतः[1]तद्[2]व्यतिरिक्तः स्यादात्माऽहंबुद्धिगोचरः ।
करण[3]प्रेरको नित्योऽस्पर्शद्रव्यत्वतो मतः ॥५७॥
सुखा[1]दिनियमान्नानाऽमूर्त्तद्रव्यत्वतो विभुः ।
गुणाश्च तस्य धीदुःखसुखेच्छायत्नभावनाः ॥५८॥
अदृ[1]ष्टद्वेषसंख्याद्या विभागान्ताश्चतुर्दश ।
ईशस्तु क्षितितो[2]यादिकर्तृत्वेनानुमीयते ॥५९॥
यः सर्वज्ञः सर्व्वविदित्यादितः श्रुतितस्तथा[1] ।
ज्ञानेच्छायत्नसंख्यादिभागान्ताष्टगुणान्वितः ॥६०॥
अविद्यो[1]पाधितो भिन्नौ जीवेशानौ न नो मतौ ।
शुद्धे ब्रह्मण्य[2]ऽविद्याया अयुक्तेरितरत्र[3] च ॥६१॥

(५४) १–२. नानेत्यस्य भावो नानाता तस्याः नानातायाः इनभूतस्य········संचारः स एवोपाधिर्यस्यां सा इनसंचारोपाधिका ।

(५५) १. साध्यं, देह एवात्मेति नास्तिकाः २. पक्षः । ३. पृथिवीसंबंधित्वात् ।

(५६) १. अणुत्वम् ।

(५७) १. यतो देहादीति आत्मा न भवति । २. देहेन्द्रियमनोव्यतिरिक्तः । ३. करणानि केनचित्प्रेर्याणि करणत्वात् कुठारवत् ।

(५८) १. आत्मा न भवति अणुत्वात् परमाणुवत् । कश्चन सुखी कश्चन दुःखी इति व्यवस्था आत्मनो नानात्वमन्तरेणानुपपद्यमाना आत्मनो नानात्वं गमयति ।

(५९) १. धर्माऽधर्मः । २. क्षित्यादिचतुष्टयं सकर्तृकं कार्यत्वात् घटवत् ।

(६०) १. ईश्वरसिद्धिः ।

(६१) १. अविद्योपाधिकृतो जीव-परमात्मनोर्भेद इति वेदान्तिनः । २. अविद्या जीवनिष्ठा ब्रह्मनिष्ठा वेति विकल्पेऽन्त्यं द्विषयति । ३. जीवपक्षे ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

परस्पराश्रयात्[1]तस्माद् भेदो वास्तव[2] एतयोः ।
निर्धार्य[3]ैवमात्माऽथ मनः संप्रति रूप्यते ॥६२॥
अस्पर्शवन्मनोऽणु स्यात् प्रमाणं तत्र चेदृशम् ।
सुखधीः करणोत्पाद्या जन्यबुद्धित्वतो यथा ॥६३॥
रूपादिधीरिति प्रोक्तमानतो नित्यता[1]ऽणुता ।
नैरंश्या[2]दणुवत्तस्य परताऽपरता त्वरा ॥६४॥
विभागो योगपार्थक्ये नानातेति गुणाष्टकम् ।
मन इत्थं तमो[1]द्रव्यं दशमं नैव संभवेत् ॥६५॥
आलोकाभावमात्रत्वान्महीरूपतयाऽपि वा ।
अतो नवैव द्रव्याणीत्येवं[1] सर्वमनाकुलम् ॥६६॥
पदार्थरत्नमञ्जूषाग्रन्थे कृष्णविनिर्मिते ।
पदार्थो द्रव्यसंज्ञोऽयं समाप्तोऽतिप्रियः सताम् ॥६७॥

---

(६२) १. जीवसिद्धौ अविद्यासिद्धिः, अविद्यासिद्धौ जीवसिद्धिरिति परस्पराश्रयो विज्ञेयः । २. पारमार्थिकः । ३. निरणायि ।

(६४) १. मनो नित्यं अस्पर्शद्रव्यत्वात् गगनवदित्येवं लक्षणात् । आकाशादिषु अनैकान्तिकव्युदासार्थं मूर्तत्वे सतीति विशेषणमूह्यम ।

(६५) १. भाट्टानां मते तमो न द्रव्यांतरम् ।

(६६) १. नवद्रव्यस्वरूपं स्वच्छं निरवयवत्वात् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

द्वितीय-गुणाख्यपदार्थवर्णनम् ।

जात्येकनिलयः कर्माऽन्यत्वे सति गुणो मतः ।
चतुर्विंशतिधा भिन्नो रूपं सरसगन्धकम् ॥६८॥

स्पर्शसंख्ये तथा मानं पृथक्त्वं योगभागकौ ।
परताऽपरताबुद्धि-सुखदुःखेच्छा[1]स्तथा ॥६९॥

द्वेषयत्नगुरुत्वानि द्रवत्वस्नेहसत्क्रियाः ।
धर्माऽधर्मौ तथा शब्द इत्यूचे कणभुक् मुनिः ॥७०॥

[1]चक्षुर्ग्राह्यं भवेद् रूपं गुणत्वे सति सप्तधा ।
शुक्लादिजलतेजोऽणुनिष्ठं नित्यं क्षमाऽणुषु ॥७१॥

अग्निसंयोगजं हेतुरूपजं[1] द्व्यणुकादिषु ।
आश्रयस्य विनाशेन विनाश्यऽग्निकुनीरगम् ॥७२॥

रसो रसनमेयः स्याद् गुणत्वे सति षड्विधः ।
कट्वादिः क्षितितोयस्थो रूपवन्नित्यतादयः ॥७३॥

घ्राणग्राह्यो भवेद् गन्धो गुणत्वे सति स द्विधा ।
सुरभ्यादिरनित्यश्च क्षितिस्थोऽन्यद् रसादिवत् ॥७४॥

स्पर्शः स्पर्शनवेद्यः स्याद् गुणत्वे सति स त्रिधा ।
शीतादिर्जलभूम्यग्निवायुस्थोऽन्यद् रसादिवत् ॥७५॥

[1]रूपादेः पाकजोत्पत्तिश्चतुष्कस्येदृशी मता ।
आपाक[2]क्षिप्तकुम्भाणुष्वग्निघातात्[3] क्रिया[4]जनिः ॥७६॥

(६९) १. इच्छा ।

(७१) १. संख्यादिष्वतिव्याप्तिव्युदासार्थं चक्षुर्मात्रेति मात्रपदमभ्यूहनीयम् । एवं स्पर्शेऽपि ज्ञातव्यम् ।

(७२) १. परमाण्वादिष्वरूपजम् ।

(७६) १. पृथिवीनिष्ठस्य । २. घटाद्यामद्रव्यपाकार्थं कुलालकृतो गर्त्ताविशेषः आपाकमित्युच्यते । ३. अग्निसंयोगात् । ४. क्रियोत्पत्तिः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

ततो विभागः संयोगः नाशः कार्य[१]क्षयस्ततः ।
ततोऽग्नियोगादौष्ण्याढ्यो रूपादेः[२] प्रक्षये सति ॥७८॥

अन्यस्मात् पाकजोत्पत्तिस्ततोऽण्वाऽऽत्मयुजेः[१] क्रिया ।
अणुषु स्यात् ततो योगः कार्याणामुदयस्ततः ॥७९॥

पिठर[१]स्यैव पक्तिश्चेदन्तरग्नेरभावतः ।
पाको न स्यादतः पीलु[२]पाकवागेव सुन्दरी ॥८०॥

संख्यैकादधियो हेतुर्न[१]न्वभेदत एकधीः ।
भेदाद् द्वित्वादिधीरस्तु नेदृशीयं कणादगीः ॥८१॥

स्वरूपं वस्तुनो भेदाभेदाविष्टौ तथा सति ।
घटस्वरूपाभेदेन कथं स्यात् पटे[१] एकधीः ॥८२॥

परस्परं स्वरूपाणामनुवृत्तेरभावतः ।
भेदस्य चै[१]करूपत्वाद् विशेषस्त्र्यादिको न ते ॥८३॥

अतः संख्या पृथक् सा च द्वैधैक[१]द्रव्यका तथा ।
अनेकद्रव्यका चाऽऽद्या त्वेकतामतिगोचरा ॥८४॥

यावद्द्रव्या द्वितीया च द्वित्वाद्या सा त्वनित्यका ।
अपेक्षा[१]बुद्धिनाशेनाश्रयनाशा[२]च्च नश्यति ॥८५॥

(७८) १. द्विण (द्व्यणु) कस्य क्षयः । २. परिमाणनिष्ठस्य ।

(७९) १. परमाण्वदृष्टवदात्मसंयोगात् ।

(८०) १. पिण्डस्य । पिठरस्यैव पक्तिरिति भट्टाः ।

२ पीलूनां परमाणूनां पाक इति या वाक् सा सुन्दरी शोभिष्टेत्यर्थः ।

(८१) १. अभेदेति ग्रन्थन एक व्यवहार-भेदः, निवन्धनश्च द्वित्वादिव्यवहार इति भूषण-कार आशंकते ।

(८२) १. वस्त्रे ।

(८३) १—उभयैकरूपत्वात् ।

(८४) १—एकं द्रव्यं आश्रयो यस्याः सा ।

(८६) १— २—

चक्षुषा घटसंयोगः	—१	एकत्वाधारावयवे कर्म	—१	एकत्वसामान्यज्ञानं	—१
तन्निष्ठैकत्वसामान्ययोर्ज्ञानं	—२	ततो विभागः	—२	अपेक्षाबुद्धेरुत्पत्तिः	—२
अपेक्षाबुद्धेरुत्पत्तिः	—३	द्रव्यारम्भकसंयोगनाशः	—३	द्वित्वोत्पत्तिः	—३
द्वित्वगुणोत्पत्तिः	—४	ततो द्रव्यनाशः	—४	द्वित्वसामान्यज्ञानम्	—४

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

परिमाणं वितस्त्यादिमानविज्ञानकारणम् ।
चतुर्द्धा च महद्दीर्घह्रस्वाणुत्वादिभेदतः ॥८६॥
नित्यानित्यभिदा द्वेधा सर्वमन्त्यं[1] पराणुषु ।
नित्यं स्याद् द्व्यणुकेऽनित्यं महादत्मादिषु ध्रुवम्[2] ॥८७॥
अध्रुवं[1] त्र्यणुकादौ स्याद् दीर्घताह्रस्वते पुनः ।
अणुत्वमहदेकार्थनिष्ठे तादृग्विधे तथा ॥८८॥
मानप्र[1]चयसंख्याभिश्चतुर्विधमनित्यकम् ।
जायते द्व्यणुके[2]ऽणुत्वह्रस्वत्वे अणुसंख्यया ॥८९॥
द्वित्वापेक्षयासमारब्धे[1] स्वकार्ये[2] त्र्यणुकस्थितात् ।
महद्दीर्घात्[3] महद्दीर्घे जायेते शिथिलो युजिः[4] ॥९०॥
प्रचयः स्यात्[1] ततस्तूलपिण्डद्वितयनिर्मिते ।
तूलपिण्डे[2] महद्दीर्घे जायेते इति मानदिक्[3] ॥९१॥
पृथक्त्वमन्यताबुद्धेः कारणत्वेन सम्मतम् ।
स्वरूपभेद एव स्यात् पृथक्त्वं चेद् घटः पटः ॥९२॥
इत्येव स्यात् पटः कुम्भादिति वाङ् नैव युज्यते ।
अन्योन्याभाव एव स्यादिति चेत्तर्हि पञ्चमी ॥९३॥

द्वित्वगुणसामान्यज्ञानं —५	ततो द्वित्वगुणनाशः —५	अपेक्षाबुद्धेर्नाशः —५
अपेक्षाबुद्धेर्विनाशः —६		
अपेक्षाबुद्धेर्नाशाद् द्वित्व-गुणनाशः —७		
एवमनेन प्रकारेण द्वित्वगुणस्यापेक्षाबुद्धेर्विनाशाद् विनाशः ॥६०॥		एवमाश्रयनाशाद् द्वित्वगुणनाशः ।

(८७) १. अणुत्वमहत्परिमाणे यस्मिन्नर्थे वर्त्तेते तत्रास्मान्न कस्मिन्नर्थे एव दीर्घताह्रस्वते अपि वर्त्तेते । ते च तादृग्विधे भवतः। अयमभिप्रायः—यथा अणुत्वमहत्परिमाणे नित्यनिष्टे नित्ये अनित्यनिष्ठे अनित्ये तथेत्यर्थः ।

२. नित्यम् ।

(८८) १. अनित्यम् ।

(८९) १. असमवायिकारणभूताभिः ।

२. द्व्यणुकनिष्ठाणुपरिमाणस्य निष्ठादित्व-संख्याऽसमवायि कारणम्

(९०) १. वर्त्तेतेति शेषः । २. चतुरणुकं

३. असमवायिकारणभूतात् । ४. संयोगः ।

(९१) १. प्रचयात् । २. अधिकरणे ।

३. परिमाणमार्गः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

घटात्पट इति व्यक्तुं घटो न पट इत्यदः ।
वचो युक्तं ततः सिद्धं पृथक्त्वं तदपि द्विधा ॥९४॥
संख्या[1]वत्तस्य[2] नाशादिसंख्ययैवोपवर्णितम् ।
प्राप्तिरप्राप्तयोर्या हि स संयोगः समीरितः ॥९५॥

(९५)—

(अ) १. एकद्रव्यकमनेकद्रव्यकं चेति ।

(आ) एकपृथक्त्वं नित्यनिष्ठं नित्यमनित्यनिष्ठं अनित्यं । अनेकपृथक्त्वमनित्यमेव ।

२. तन्तुसंयोगस्य स्वकार्येण सह संयोगकार्येण पटेन सह एकस्मिन्नथ तन्तुलक्षणे वृत्तिः ।

(अ) ३. अवयवे कर्मोत्पन्नं यदावयवान्तराभागं करोति तदाऽपेक्षावुद्धेरुत्पत्तिः। इत्येकः कालः। यदा द्रव्यारम्भकसंयोगनाशः तदा परत्वानुत्पद्यत इत्येकः कालः । द्रव्यविनाशः सामान्यबुद्धेभ्यश्चोत्पत्तिरित्येकः कालः। द्रव्यविनाशाच्च परत्वस्य विनाशः ॥१॥

(आ) असमवायिकारणविनाशात् कथम् । अपेक्षाबुद्धिः, परत्वाधारे च कर्मेत्येकः कालः। ततो दिक्पिंडविभागः, परत्वस्य चोत्पत्तिरित्येककालः । सामान्यबुद्धेरुत्पत्तिः दिक्पिंडसंयोगस्य च विनाशः ।।२।।

(इ) अपेक्षाबुद्धिविनाशात्कथम् । उत्पन्ने परत्वे सामान्यबुद्धेरुत्पत्तिः, अपेक्षाबुद्धेर्विनता (विनाशता) गुणबुद्धेरुत्पद्यमानतेत्येकः कालः । उपेक्षाबुद्धिविनाशः गुणबुद्धेरुत्पत्तिः गुणस्य विनाशात् द्रव्यबुद्धिरुत्पद्यतेत्येकः कालः । ततो द्रव्यबुद्धिरुत्पद्यते गुणस्य च विनाशः ॥३॥

(ई) समवाय्यसमवायिनिमित्तकारणानां विनाशादपि कथम्। अपेक्षाबुद्धेरुत्पत्तिः पिंडावयवेऽपि कर्मेत्येकः कालः । ततश्चावयवान्तरविपरत्वस्य चोत्पत्तिः पिंडेऽपि कर्म इत्येकः कालः। ततश्च द्रव्यारम्भसंयोगनाशः दिक्पिंडसंयोगः सामान्यबुद्धेश्चोत्पत्तिः अपेक्षाबु नाशता इत्येकः कालः । ततः पिंडविनाशाद्दिक्पिंडसंयोगनाशः । अपेक्षाबुद्धेर्विनाशः । एतत्सर्वं युगपत त्रयाणां समवाय्यसमवायिनिमित्तानां विनाशात्परत्वस्य विनाशः ।।४।।

(उ) द्रव्यापेक्षाबुद्धेर्युगपद्विनाशादपि कथम् । परत्वाधारेऽवयवे कर्म अपेक्षाबुद्धेरुत्पत्तिरित्येकः कालः। ततश्च विभागैः परत्वस्य चोत्पत्तिरित्येकः कालः । ततश्च द्रव्यारम्भकसंयोगनाशः, सामान्यबुद्धेरुत्पत्तिः, अपेक्षाबुद्धेश्च विनाश इत्येकः कालः। ततश्च द्रव्यविनाशः अपेक्षाबुद्धेश्च नाशः इत्येकः कालस्ततो द्रव्यबुद्ध्योर्विनाशात्परत्वस्य विनाशः।।५

(ऊ) द्रव्यसंयोगविनाशादपि कथम्। परत्वाधारावयवे कर्म इत्येकः कालः। ततश्च विभागः, पिंडे कर्म चोत्पद्यते, अपेक्षाबुद्धेश्चोत्पत्तिरित्येकः कालः। ततश्च परत्वस्योत्पत्तिः द्रव्यारम्भकसंयोगनाशः, दिक्पिंडविभाग इत्येकः कालः । ततश्च सामान्यबुद्धेरुत्पत्तिः पिंडविनाशः दिक्पिंडसंयोगविनाशश्चेत्येकः कालः, ततो गुणबुद्धिसमकाल पिंडसंयोगयोर्विनाशात् परत्वस्य विनाश इति ।।६।।

(ए) संयोगापेक्षा बुद्ध्योर्युगपद्विनाशादपि कथं। परत्वोत्पत्तिः परत्वाधारे कर्म चेत्येकः कालः। ततश्च परत्वसामान्यज्ञानम्, दिक्पिंडविभागश्चेत्येकः, दिक्पिण्डसंयोगविनाशश्चेत्येकः कालः । ततः संयोगापेक्षाबुद्ध्योर्विनाशात्परत्वस्य विनाशः।

अनेन प्रकारेण नाशः परत्वस्य सप्तविधो ज्ञातव्यः ।। इतरत्सुगमं ॥७॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

संयुक्तबुद्धिगम्यः स्यात् त्रिविधः स च वर्णितः ।
गुणद्रव्यक्रियाहेतुराद्यश्चित्तात्मनोर्मतः ॥९६॥
द्वितीयोऽवयवानां च तृतीयो घातनादने ।
पुनस्त्रिधोभयैकस्थ-कर्मसंयोगजत्वतः ॥९७॥
आद्यो महिषयोरन्यः शुकमाकन्दयोः परः ।
शाखालतायुजेः शाखिलतायोगः प्रकीर्त्तितः ॥९८॥
चतुर्द्धाऽन्त्योऽपि बहुभिद् द्वाभ्यामेकत एव च ।
योगौ द्वौ चैकतः स्यातामाद्यस्तन्तुभिरीरितः ॥९९॥
तुरीयोगैस्तुरीचेलयोगोऽन्यस्तन्तुकद्वये ।
वियद्योगद्वयाद् व्योमद्वितन्तुकयुजिर्भवेत् ॥१००॥
तृतीयस्तूक्त एवाऽऽदावन्त्योऽण्वोः पार्थिवाप्ययोः ।
संयोगे सति तत्तुल्यजात्यणुद्वययोगतः ॥१०१॥
द्वचणुकद्वितये जाते पार्थिवद्वचणुकस्य हि ।
आप्याणुना भवेद् योग आप्यस्यापीतराऽणुना ॥१०२॥
नाशस्त्वाश्रयनाशेन विभागाद् द्वैकनिष्ठतः ।
संयोगस्याश्रितस्य स्यादित्यलं विस्तरेण नः ॥१०३॥
गुणः संयोगहन्ता स्याद् विभागः प्रविभक्तधीः ।
तत्र प्रमाणं नन्वस्तु योगनाशे विभागधीः ॥१०४॥
नैतदाश्रयनाशेन योगनाशोऽपि नैव हि ।
विभागधीरतः सिद्धो विभागः स त्रिधा मतः ॥१०५॥

(९६) १. गुणादित्रिकस्यासमवायिकारणः।

(९७) १. उभयश्चैव उभयौ कौ तयोः तिष्ठत इति उभयैकस्थे ते च ते कर्म्मणी च उभयैकस्थकर्मणी, ते च संयोगं च उभयैकस्थकर्मसंयोगास्तेभ्योऽसमवायिकारणेभ्यो जातस्तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् ॥

(९८) १. आश्रयः।

(९९) १. संयोगजः। २. संयोगः ।

(१०१) १. तुल्या जातिर्यस्य तत्तुल्यजातिश्च तत् अणुद्वयं च तुल्येत्यादि, ताभ्यां तुल्यजात्यणुद्वयं तस्य योगस्तस्मात् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

योगवत् पूर्वकौ तूक्तौ तद्वदेव तृतीयकः ।
हेतुमात्रविभागोत्थो हेत्वहेतुविभागजः ॥१०६॥
इति द्वेधाऽन्तिमः प्रागवदाद्यस्तन्तोर्विभागतः ।
तन्त्वन्तरात् तदाऽऽकाशदेशतो भाग[१] ईरितः ॥१०७॥
नाशस्तूत्तरसंयोगाश्रयनाशत इष्यते ।
पराऽपरधियोर्हेतू परताऽपरते मते ॥१०८॥
तनुयोगाल्पभूयस्त्वनिमित्ताऽस्तु परादिधीः ।
द्रष्टरि व्यभिचारित्वान्नैतद्युक्तं द्विधा च ते ॥१०९॥
दिक्काला[१]क्तततातस्तन्नाशः सप्तविधो मतः ।
हेतु[२]त्रयस्य प्रत्येकं युगपच्च विनाशतः ॥११०॥
द्रव्यापेक्षाधियोर्नाशात् समवाय्यन्य[१]योस्तथा ।
निमित्तासमवायिस्थनाशा[२]श्चेत्येष संग्रहः ॥१११॥
कार्यं यदाश्रयं तत्स्यात् समवायीतरत्पुनः ।
तत्प्रत्यासत्तिभाक् सा च द्वेधैका हेतुसंयुजेः ॥११२॥
स्वकार्येण सहैकस्मिन्नर्थे वृत्तिः परा पुनः ।
हे[१]तुरूपस्य तत्का[२]र्यकारणे[१]न सह स्थितिः ॥११३॥
एकस्मिन्निति संप्रोक्तं ताभ्यामन्यन्निमित्तकम् ।
परताऽपरते प्रोक्ते धिषणा प्रोच्यतेऽधुना ॥११४॥
बुद्धिर्ज्ञानं प्रमाणं तु स्यादनुव्यवसायधीः ।
जानामीति द्विधा सा च नित्यानित्यविभेदतः ॥११५॥

(१०३) १. एकार्थसमवेतादित्यर्थः ।
(१०७) १. द्वितंतुकपटदेश्यविशिष्टाकाशात् ।
(११०) १. दिक्कालक्तत्वेनेत्यर्थः ।
२. समवायादिकारणत्रयस्य ।
(१११) १. असमवायिनोः ।
२. तन्तुरूपस्य ।
(११३) १. तच्छब्देन हेतुरूपं तस्य तत्कार्यपटनिष्ठं रूपं तस्य कारणेन पटेन ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नित्येश्वरगता तस्यानित्यता चामुतो मता ।
घटोऽयमेतज्जनकानित्यज्ञानान्यबुद्धितः ॥११६॥
जन्यः कार्यत्वतो यद्वत् पटादिरिति मानतः ।
अनित्या जीवसंस्था स्याद् बुद्धिः सा द्विविधा मता ॥११७॥
विद्याऽविद्या च तत्रान्त्या चतुर्द्धा समुदीरिता ।
संशीतिपर्ययस्वप्नानवसायविभेदतः ॥११८॥
संशयोऽनेकपक्षाणामवसायो विकल्पतः ।
स्थाणुः स्यात्पुरुषो वेति स्यादन्यत्रान्यशेमुषी ॥११९॥
विपर्ययो यथा रज्जौ सर्प्पधीर्ननु दर्शनात् ।
स्मृतेर्भेदाग्रहादेष व्यवहारो न तच्छुभम् ॥१२०॥
वस्तुस्वरूपभेदस्य वस्तुनोर्ग्रहणे कथम् ।
अग्रहो गुरुराद्धान्ते भवेन्नाप्यसतः प्रथा ॥१२१॥
रज्जावहेर्वियत्पुष्पं न हि क्वापि प्रतीयते ।
नासत्ख्यातिरतो नाऽऽत्मख्यातिरप्यत्र चातुरीम् ॥१२२॥
धत्ते यद्यपि विज्ञानाकार आशीविषो मतः ।
बाह्यस्थं त्वान्तरं नैव नाप्यऽनिर्वचनीयता ॥१२३॥
असत्सदुभयान्यस्मिन्नर्थे मानस्य हानितः ।
अतो वल्मीकदृष्टोऽही रज्जावाभाति दोषतः ॥१२४॥

(११६) १. वक्ष्यमाणात् प्रमाणात् । ३. ज्ञानम् ।
(११७) १. प्रमाणात्, २. निष्ठा ।
(११९) १. कोटिद्वयस्य ।
(१२०) १. अख्यातिवादी प्रभाकर आक्षिपति ।
(१२१) १. प्रभाकरः ।
२. असत्ख्यातिवादिनं बौद्धं निराचष्टे ।
(१२२) १. आत्मख्यातिवादी च बौद्धभेदः ।
(१२३) १. अनिर्वचनीयख्यातिवादिनो वेदान्तिनः ।
(१२४) १. अन्यथाख्यातिवादी तार्किकः परिहरति ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

इति चारु वचो युक्तं सिद्धः स्वप्नस्तु लोकतः ।
स्यादनध्यवसायो नः किं संज्ञो वृक्ष इत्ययम् ॥१२५॥
विद्याऽपि स्याच्चतुर्भेदा प्रत्यक्षमनुमानकम् ।
स्मृतिरार्षमिति प्राहुरपरोक्षा यथार्थधीः ॥१२६॥
प्रत्यक्षं द्विविधं तच्च योग्यऽयोगिविभागतः ।
धर्मोऽध्यक्षः[1] प्रमेयत्वात् केषांचित्स्याद् घटादिवत् ॥२७॥
योगिसिद्धिरिति द्वेधे[1]तरदाद्यमकल्पकम्[2] ।
निर्विशेषार्थधी[3]रन्यत् सविकल्पकमीरितम् ॥१२८॥
शब्दोल्लेख[1]भवं तत्र[2] षोढा संबन्धमूचिरे ।
जनकं ज्ञातृ[3]शीर्षण्या अत्रैषा प्रक्रियोच्यते ॥१२९॥
योगाद् द्रव्यग्रहो युक्तसमवायाद् गुणादिधीः ।
संयुक्तसमवेतस्थसमवायाद् गुणत्वधीः ॥१३०॥
शब्दधीः समवायात् स्याच्छब्दता समवेतगात् ।
समवायात् प्रतीयेत विशेषणविशेष्यता ॥१३१॥
एतत्संबन्धवन्निष्ठाभावधीहेतुरिष्यते ।
अविनाभाव[1]जं ज्ञानमनुमानं प्रचक्षते[2] ॥१३२॥
दृष्टसामान्यतो दृष्टभेदाद् द्वेधा तदीरितम् ।
दृष्टमध्यक्षयोग्यार्थग्राहि धूमाद् यथाग्निधीः ॥१३३॥
स्वभावविप्रकृष्टार्थभासकं चेतरद् यथा ।
चक्षुर्धी रूपधीतस्तत् परार्थस्वार्थभेदतः ॥१३४॥

(१२७) १. प्रत्यक्षः ।
(१२८) १. अयोगिप्रत्यक्षं निर्विकल्पसविकल्पकभेदेन द्विधा भवतीति। २. निर्विकल्पम्। ३. विशेषरहितार्थधीः ।
(१२९) १. उच्चारः, २. सविकल्पके, ३. तर्कविदः ।
(१३२) १. अविनाभावोपेतधूमजं ज्ञानम् २. कंदलीकाराः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पुनर्द्विधोपदेशेन हीनमं[1]न्त्यमथा[2]ऽग्रिमम् ।

तद्युक्तं स च पञ्चांशं वाक्यमिष्टं प्रतिज्ञया ॥१३५॥

सह हेतुः सदृष्टान्ते उपनीत्यु[1]पसंहृती ।

इत्यंशाः पक्षवागाद्या सिसाधयिषया यथा ॥१३६॥

अग्निमान् गिरिरित्यन्यो धूमवत्त्वादितीदृशः ।

साधनव्यापका लिङ्गवागिष्टः स त्रिधा मतः ॥१३७॥

अन्वयव्यतिरेकी च व्यतिरेक्यन्वयी तथा ।

पञ्चरूपो भवेदाद्यः पक्षधर्मत्वमादिमम् ॥१३८॥

रूपसत्त्वं सपक्षेऽन्यद् विपक्षापेतता[1]ऽपरम् ।

अबाध्यता तु प्रत्यर्थिपक्षता चेति पञ्चमम् ॥१३९॥

स्याद् व्याप्यवृत्तिता हेतोः पक्ष आद्यं द्वितीयकम् ।

सपक्षेऽल्पे समग्रे वा वृत्तिर्व्यावृत्तिरिष्यते ॥१४०॥

विपक्षात्सकलादन्यच्चतुर्थं त्वविरोधिनि ।

प्रामाण्येन प्रतिज्ञासे (स्ये) साध्यतद्विपरीतयोः ॥१४१॥

साधनस्य त्रिरूपत्वं पञ्चमं रूपमीरितम् ।

विपक्षे बाधकस्तर्कोऽप्यऽनुमानाङ्गमिष्यते ॥१४२॥

उपाधेर्घातकत्वेन व्यभिचार[1]स्य चाध्रुवम् ।

साधना[2]व्यापकः साध्य-समव्याप्तिः समीरितः ॥१४३॥

उपाधिरग्नीषो[1]मीयहिंसाऽधर्मत्वसाधने ।

(१३५) १. स्वार्थं, २. परार्थं ।

(१३६) १. उपनयनिगमने ।

(१३९) १. विवृत्तता, २. असत्प्रति- क्षता ।

(१४३) १. अनैकांतिकस्य ।

२. साधनाव्यापकउपाधिरित्युक्ते अनित्यः शब्दः कृतकत्वादित्यत्र सावयवत्वं उपाधि स्यात् । तदर्थं साध्यसमव्याप्तिरिति पदम् । साध्यंसमव्याप्तिरुपाधिरित्युक्ते तस्मिन्नेवानुमाने कार्यत्वमप्युपाधिः स्यात् । तदर्थमुक्तं साधना- व्यापकपदम् । तदन्यत्वोपाधिव्युदासार्थं पमसदम् ॥

(१४४) १. वैधी हिंसा ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

हिंसा हेतोर्निषिद्धत्वमुपाधिर्यादृगिष्यते ॥१४४॥
तर्क्को युक्तिरिह प्रोक्तस्तर्क्कतत्त्वविचक्षणैः[1] ।
यथा यद्यग्न्यभावः स्याद् धूमाभावोऽपि ते भवेत् ॥१४५॥
इत्येकादशधा चासावन्तर्वार्णिभिरीरितः ।
क्षितितोयादिजन्यं स्यात् कर्ता कार्यत्वहेतुतः ॥१४६॥
यथा घटादिर्नन्वस्तु कार्यता कर्तृजन्यता ।
माऽस्तु को बाधकस्तर्क्क इति पृष्टेऽभिधीयते ॥१४७॥
व्याघातात्माश्रयान्योन्याश्रयता चक्रकास्थिती[1] ।
प्रतिबंदी च कल्पनालाघवं[2] गौरवं[3] तथा ॥१४८॥
उत्सर्गश्चापवादश्च[1] वैयर्थ्यं चान्तिमं मतम् ।
अकर्तृताकार्यतयोर्व्याघातः स्यात् समुच्चये ॥१४९॥
हिमाग्न्योरिव नन्वस्तु तत्र[1] नात्रेतिचेद् वद ।
किं विशेषोऽस्ति नो वाऽत्र नास्ति चेन्मूकतां व्रज ॥१५०॥
यद्यस्ति किं स एव स्यान्मानमात्मन्युतान्यकः[1] ।
स चेदाऽऽत्माश्रयत्वं स्यादन्यश्चेत्तत्र किं भवेत् ॥१५१॥
पूर्वो मानं तृतीयो वा पूर्वश्चेत् स्याद् ध्रुवं तदा ।
अन्योन्याश्रयताऽथ स्यात् तृतीयश्चक्रकं भवेत् ॥१५२॥
तृतीये तु चतुर्थश्चेदनवस्थैवमासजेत् ।
चतुर्थस्तु प्रमाणं चेदाद्यः किं नैवमीदृशी ॥१५३॥
प्रतिबंदीत्यकर्तृत्वे कार्यतैव न सेत्स्यति ।
सिद्धोऽत ईश एकश्च कल्पनालाघवाद् भवेत् ॥१५४॥

(१४६) १. शास्त्रविद्भिः ।
(१४८) १. चक्रकाश्रयानवस्थे । २. कल्पनालाघवम्, ३. कल्पना गौरवम् ।
(१४९) १. शरीरेषु अपवादित्वात्, अपवादस्तर्क्कः तदपेतत्वात् ।
(१५०) १. तत्र हिमाग्न्योर्विषयैर्व्याघातोऽस्तु ।
(१५१) १. तस्मिन् विषये ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

कल्पनागौरवं तु स्याद् बहुतायां परेशितुः ।
नन्वदेहस्य कर्तृत्वमेव नास्ति जगत्कृतिः ॥१५५॥
कुतः स्यादिति चेत् पश्य कर्तृत्वं चेतनत्वतः ।
उत्सर्गात्[1] संभवेत् किं न निश्चयोऽस्तीति चेच्छृणु ॥१५६॥
मुक्तात्मस्वपवादित्वादस्तु मानं परेश्वरे ।
तन्माने किं प्रमाणं स्यादिति चेन्मौनमुत्तरम् ॥१५७॥
वैयात्यसंज्ञं नह्यस्य प्रश्नस्यान्तोऽवसीयते[1] ।
इत्थं तर्कास्तर्क[2]दोषाः संप्रोक्तास्तर्ककर्कशैः ॥१५८॥
आपाद्या सिद्धिराद्यः स्याद् यथा कर्त्ता यदीश्वरः ।
रागी स्यादित्यसिद्धिश्चापादकस्य द्वितीयकः ॥१५९॥
यथा यदीशो देही[1] स्यात् कर्त्ता स्यात् तदितीदृशः ।
उभयाऽसिद्धता यादृक् देहीशश्चेत् तदा भवेत् ॥१६०॥
धर्म्मादिभागिति प्रोक्तो मूलशैथिल्यमुत्तरः ।
यथा यदीशः कर्त्ता स्याद् विप्रः स्यात् तर्ह्यसाविति ॥१६१॥
मिथस्तर्कविरोधस्तु पञ्चमो यद्वदीश्वरः ।
कर्त्ता यदि भवेद् रागी तर्हिस्यादित्युदाहृते[1] ॥१६२॥
कर्त्ता चेन्न भवेत् तर्हि जगदाऽऽकस्मिकं भवेत् ।
तर्कद्वयविरोधोऽयमिष्टापत्तिः पुनः पुनः ॥१६३॥
यथा यदीश्वरः कर्त्ता स्यात् तर्हि ज्ञानवानिति ।
ईश्वरश्चेतनश्चेत्स्यादनित्यज्ञानवान् भवेत् ॥१६४॥

(१५६) १. सामान्यविधेः ।
(१५८) १. ज्ञानं न प्राप्तः । २. आपाद्यासिद्धिः १. आपादका सिद्धिः । २. उभयासिद्धिः । ३. मूलशैथिल्यं । ४. तर्कविरोधः । ५. इष्टापत्तिः । ६. विपर्ययापर्यवसायित्वम् । ७. इति सप्त तर्काः ।
(१६०) १. दहित्वमापादकम् ।
(१६२) १. इत्युक्ते ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तथा तु न भवत्येषः, तस्मान्नो चेतनोऽप्यसौ।
इति वक्तुमशक्यत्वादित्यऽपर्यवसायिता ॥१६५॥
विपर्ययस्य दोषोऽयमुक्तस्तर्क्कस्य सप्तमः।
सोऽयं तर्क्कोऽनुमानाङ्गमित्यलं बहुनाऽमुना ॥१६६॥
पक्षव्यापी सपक्षस्थोऽविद्यमानविपक्षकः।
स्यात्केवलान्वयी प्रोक्तः स च योगि[१]प्रसाधने ॥१६७॥
पक्षव्यापी सपक्षेण हीनोऽपेतो[१] विपक्षतः।
केवलव्यतिरेकी स्याद् यथा कार्यमशेषकम् ॥१६८॥
सर्व्ववित्कर्तृजन्यं स्यात् कादाचित्कत्वतो नयत्।
एवं तदेवं नैव स्याद् यथाकार्यमितीदृशम् ॥१६९॥
हेतुरन्यत्वतः[१] सर्वो हेत्वाभासः स षड्विधः।
असिद्धश्च विरुद्धश्च स्यादनैकान्तिकस्तथा ॥१७०॥
अनध्यवसितः कालातीतः प्रकरणे समः।
पक्षेऽनिश्चितवृत्तिः स्यादाऽऽद्यो यादृ[१]गनित्यकः ॥१७१॥
चाक्षुषत्वेन शब्दः स्यादिति पक्षविपक्षगः।
विरुद्धो नित्यकः शब्दः कार्यत्वादितिवत्परः ॥१७२॥
पक्षत्रयस्थो यद्वत्स्यात् प्रमेयत्वादनित्यकः।
शब्द इत्यपरो हीनसपक्षकविपक्षकः ॥१७३॥
पक्षव्यापी यथा सर्वमनित्यं सत्त्वतो मतम् ॥
प्रमाणबाधिते पक्षे वर्त्तमान उदीरितः ॥१७४॥
कालातीतो यथाऽनुष्णः पदार्थत्वाद् हुताशनः।

(१६७) १. धर्म्मः कस्यचित्प्रत्यक्षः प्रमेयत्वात् घटादिवत्।
(१६८) १. व्यावृत्तत्तः।
(१७०) १. पूर्वोक्तलक्षणकृता द्वे तु त्रयात्।
(१७१) १. यथा।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

स्वपक्षे परपक्षे च त्रिरूपोऽन्त्यः समीरितः ॥१७५॥
सपक्षपक्षयोरन्यतरत्वात् स्यादनित्यकः ।
शब्द इत्यादिवत्तेषां भेदाः सन्ति सहस्रशः ॥१७६॥
सम्यग्दृष्टान्तवागिष्टमुदाहरणमत्र च ।
साधर्म्यं वैधर्म्यभिदा[1] द्वैविध्यं संप्रतीयते ॥१७७॥
यद्यद् धूमवदग्न्याढ्यं तत्तद्यद्वन्महानसम् ।
इत्याद्यं न यदेवं स्यान्न तदेवं यथा ह्रदः ॥१७८॥
इत्यन्त्यमेतदाभासा[1] मनो मूर्त्तत्वतः क्षयि ।
अणुवत् कर्मवद् व्योमवन्नृश्रृंगवदित्यऽमी ॥१७९॥
स्युः साध्यसाधनद्वन्द्वाश्रयशून्याः[1] परौ पुनः ।
वाग्दोषौ व्याप्त्यनुक्तिः स्यादेको घटवदित्ययम् ॥१८०॥
व्याप्तेर्विपर्ययोक्तिः स्यादपरो यदनित्यकम् ।
तन्मूर्तं दृष्टमित्येवं वैधर्म्येऽप्यूह्यमीदृशम्[1] ॥१८१॥
दृष्टान्तस्योपमानेन पक्षे व्याप्त्यभिधायि यत् ।
वचनं सोपनीतिः स्यात् सा द्वेधा संप्रकीर्तिता ॥१८२॥
उदाहरणवद् धूमवांश्चायमिति साऽऽदिमा ।
अधूमवान् गिरिर्नेति द्वितीयोक्ता विशारदैः ॥१८३॥
सहेतुका प्रतिज्ञाया वाक् स्यान्निगमनाऽभिधा ।
अतोऽग्निमाने च गिरिरित्युक्तमनुमानकम् ॥१८४॥
अन्तर्भावोऽनुमाने स्याच्छब्दस्य ज्ञातसंगतिः[1] ।
यतः प्रत्याययत्यऽर्थं[2] शब्दो नाज्ञातसंगतिः ॥१८५॥

(१७७) १. भेदेन ।
(१७९) १. उदाहरणाभासाः ।
(१८०) विकलाः ।
(१८१) १. एवमेव साधनाव्यावृत्तं साध्याव्यावृत्तं उभयव्यावृत्तं आश्रयविकलं । वाग्दोषद्वयोपेतं चोदाहरणम् । पूर्व्वानुमानं दृष्टांतेष्वेव क्रमेण ऊह्यम्।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

उपमानं[1] तु गोतुल्यो गवयः स्यादितीदृशम् ।
तच्च शब्दो वने दृष्टे[2] गवयेऽनेन तुल्यका ॥१८६॥
मद्गौरित्युपमानं चेन्नैतदेषा स्मृतिर्यतः ।
श्रुतातिदेशवाक्यस्य[1] वने[2] या गवये[3] मतिः ॥१८७॥
न सोपमानमध्यक्षमेव तत् सविकल्पकम् ।
बहिर्भावाऽविनाभूतो गृहेऽभावोऽवधारितः ॥१८८॥
जीवतोऽस्तोऽनुमानं स्यादर्थापत्तिरपि ध्रुवम् ।
संभवेदयुतं[1] लक्ष इत्ययं[2] संभवोऽपि नः ॥१८९॥
अनुमानं यतो लक्षेऽयुतव्याप्तिः प्रतीयते ।
ग्राह्यः प्रत्यक्षतोऽभावो नातोऽभावप्रमाणता ॥१९०॥
अज्ञातकर्तृकं वादपारंपर्यमुदाहृतम् ।
ऐतिह्यं तच्च शब्देऽन्तर्भूतमित्यनुमानकम् ॥१९१॥
प्रत्यक्षमिति माने द्वे कणादेनोपवर्ण्यते ।
प्रामाण्यं च तयोर्नैव स्वतः[1]स्तन्मान[2]हानितः ॥१९२॥
धीहेतुमात्रजन्यस्थं प्रामाण्यं द्वित्ववद् भवेत् ।
दोषोऽनुत्पाद्यमानत्वे सति ज्ञानाश्रयत्वतः ॥१९३॥
इति चेदप्रमाणत्वेऽप्येवं वक्तुं प्रशक्यते ।
तस्मात्[1] प्रमाणं धीहेतु[2]व्यतिरिक्तात्महेतुकम् ॥१९४॥

(१८५) १. ज्ञातसंबंध आगमः । अनुमानमपि ज्ञातसंबंधमेवार्थं ज्ञापयति ।

२. ज्ञापयति ।

(१८६) १. चिरंतन-नैयायिकाभिमतमुपमानं शब्दे अन्तर्भावयति । २. मीमांसकाभिमतमुपमानमाशङ्कते ।

(१८७) १ श्रुतं अतिदेशवाक्यं गोसदृशो गवय इति वाक्यं येन स तस्य ।

२. इदानींतननैयायिकाभिमतमुपमानं प्रत्यक्षे अन्तर्भावयति ।

३. अयं गवय इति मतिः ।

(१८९) १. दशसहस्रं नाम । २. वनक्ष विषये(?) ।

(१९२) १. स्वतस्त्वप्रमाणाभावात्

२. स्वतः प्रामाण्यवादिनो मीमांसकाः तान्निराचष्टे ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

धीविशेषत्वतो यादृगमानमिति सुन्दरम् ।
अबाध्या[1]ऽनवबुद्धार्थबोधकत्वं[2] प्रमाणता ॥१९५॥
तच्च वस्तुस्वभावः स्यान्न शक्ति[1]र्मानिहानितः ।
दा[2]हस्फोटादिकार्याणामन्यथाऽनुपपत्तिता ॥१९६॥
शक्तिः स्यादिति चेन्मैवं कार्यमग्नेर्भविष्यति ।
किं शक्त्या ननु मन्त्रादौ सति कार्यं न दृश्यते ॥१९७॥
सत्यप्यग्नौ न मन्त्राद्यभावेनान्वितवह्निना ।
कार्यसिद्धेरतः शक्तिर्नाङ्गीकार्येति संग्रहः ॥१९८॥
ज्ञानं संस्कारमात्रोत्थं स्मृतिः सा[1] चाप्रमा[2] मता ।
संशया[3]दिवदध्यक्षानुमानान्य[4]त्ववतस्तथा ॥१९९॥
इच्छा द्वेषाऽनुमानादि कार्यमस्याः प्रकीर्त्तितम् ।
आर्षं तु प्रातिभं ज्ञानं मुनीनां तपसेरितम् ॥२००॥
बालानां च यथा कन्या ब्रूते प्रातः पिता मम ।
आयास्यति मनो मेऽत्र प्रमाणमिति वर्ण्णता[1] ॥२०१॥
बुद्धिः सविभवा[1] सम्यग् व्याख्यास्यामोऽधुना सुखम् ।
निरुपाधिर्य इच्छायाः विषयस्तत् सुखं मतम् ॥२०२॥
धर्मो हेतुर्मनो मानं कार्यं माऽऽस्यप्रसन्नता ।
द्वेषस्य गोचरो दुःखं निरुपाधिनिमित्तकम् ॥२०३॥
अधर्मोऽत्र मनो मानं कार्यमास्यविषण्णता ।

(१९४) १. स्वमतमुपसंहरति—परतः प्रमाणवादी तस्मादिति । २. धियो हेतवः सन्निकर्षादयः, धीहेतुव्यतिरिक्तबाध्यव्यवहारलक्षणहेतुकत्वदृष्टा ते ज्ञातव्यम् । पक्षे च—धीहेतुव्यतिरिक्ता बाध्यव्यवहारस्वरूपहेतुकत्वं ज्ञातव्यम् ।

(१९५) १. अज्ञातार्थः ।

२. बोधकत्वं प्रमाणस्वरूपमिति तार्जिकाः ।

(१९६) १. बोधकत्वं पृथक् पदार्थशक्तिरिति मीमांसकाः ।

२. दाहस्फोटादिकार्याणि शक्तिमन्तरेणानुपपद्यमानानि वह्नौ शक्तिं गमयन्ति । इत्यर्थापत्तिः प्रमाणम् ।

(१९९) १. पक्षः । २. साध्यम् । ३. दृष्टान्तः । ४. साधनम् ।

(२०२) १. सविस्तरा ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

इच्छा स्यात् प्रार्थना सा च द्वेधा नित्यादिभेदतः ॥२०४॥
नित्यैशी जीवगाऽनित्या कार्यं चास्याः प्रयत्नकः ।
रोषो द्वेषो भवेत् कार्यमस्य प्रोक्तं निवर्त्तनम् ॥२०५॥
द्रोहक्रोधादयो भेदा द्वेषस्यैव समीरिताः ।
उद्योगः[१] स्यात् प्रयत्नोऽसौ द्वेधा नित्यादिभेदतः ॥२०६॥
नित्य ऐशः परो जैवः सोऽपि द्वेधाऽग्रिमस्तु नः ।
इच्छादि[१]पूर्वकोऽन्योऽपि प्राणधारणपूर्वकः[२] ॥२०७॥
मानं च तत्र स्वपतोऽसुक्रिया[१] यत्नहेतुका ।
प्राणक्रियात्वतो जाग्रदसुचेष्टावदिष्यताम् ॥२०८॥
गुरुत्वमाद्यपातैका हेतुः स्यात् परिशेषतः ।
पार्थिवाऽऽप्याणुगं नित्यं कार्यगं हेतुपूर्वकम् ॥२०९॥
नित्याऽनुमेयमब्भूगं हेतुनाशाच्च नश्यति ।
द्रवत्वं स्यन्दने हेतुः स्याद् भूमिजलवह्निगम् ॥२१०॥
जले सांसिद्धिकं भूमितेजसोरग्नियोगजम् ।
[१]जत्वादावग्निसंयोगाश्रयनाशाच्च नश्यति ॥२११॥
स्नेहधीविषयस्नेहो जलैकनिलयो मतः ।
नित्यताऽनित्यतोत्पत्तिव्यवस्था तु गुरुत्ववत् ॥२१२॥
संस्कारस्त्रिविधो वेगस्थितस्थापकभावनाः ।
तत्र वेगो महीतोयवह्निवायुमनोभवः ॥२१३॥
स द्वेधोक्तः क्रियावेगजत्वेनाद्यः शिरादिषु ।
जलेऽन्यः स्पर्शवद् द्रव्ययोगनाशी समीरितः ॥२१४॥

(२०६) १. उद्यमः ।
(२०७) इच्छादिलिङ्गकः । २. प्राणचेष्टालिंगकम्य ।
(२०८) १. प्राणचेष्टा ।
(२११) १. लाक्षादौ ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

प्रागवस्थाऽन्यधीभूतस्वाश्रयप्रागवस्थितेः ।
संपादको गुणोऽभीष्टः स्थितस्थापकसंज्ञितः ॥२१५॥
नित्यताऽनित्यतोत्पत्तिप्रक्रिया तु गुरुत्ववत् ।
गुणोऽसाधारणः पुंसो[१] भावना स्मृतिकारणम् ॥२१६॥
पट्वभ्यासादरज्ञानजन्यो[१] नित्यानुमेयकः ।
अतीन्द्रियौ गुणौ पुंसो धर्म्माधर्मावुदाहृतौ ॥२१७॥
पुत्राद्यभ्युदये हेतुर्धर्मो निःश्रेयसे तथा ।
कैवल्यसंज्ञे दुःखैकहेतुर्धर्मेतरो मतः ॥२१८॥
द्रव्यादेर्धर्म्मतां ब्रूते तौतातितपदानुगः[१] ।
तथा सत्यक्षगम्यः स्याद् धर्मो नो वेदगोचरः ॥२१९॥
क्रियायाः क्षणभंगित्वान्न तस्याश्च फलं भवेत् ।
अतः सोमादिकर्म्मभ्यो जातं शब्दैकगोचरः ॥२२०॥
आत्मनिष्ठं फलोत्पादि कर्तृ तत्कालवर्त्ति च ।
अपूर्वं यत्तदेव स्याद् धर्माधर्मवचःपदम् ॥२२१॥
तौ चान्त्यसुखदुःखादिविनाश्यौ वर्ण्णितौ बुधः ।
शब्दः श्रोत्रैकविज्ञेयो जात्याधारः स च द्विधा ॥२२२॥
वर्ण्णो ध्वनिश्च तत्राद्यः कादिरन्त्यः करादिजः ।
वर्ण्णसंघः पदं प्रोक्तं नन्वेतदसमञ्जसम् ॥२२३॥
प्रत्येकमभिदध्युः किमर्थं ते संघशोऽथवा ।
नाद्योऽप्रतीतेर्नान्त्योऽपि वर्णानां क्षणिकत्वतः ॥२२४॥
संघातानुपपत्तेस्तद् यतोऽर्थप्रत्ययो भवेत् ।
स शब्दः स्फोटसंज्ञः स्यादित्यूचे पाणिनिर्मुनिः ॥२२५॥

(२१६) १. आत्मनः ।
(२१७) १. त्रिभ्योजन्यः ।
(२१९) १. भाट्टः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

नैतदेवं यतः पूर्व्ववर्णसंस्कारसंयुतः ।
वर्णान्त्यो बोधकस्तस्मान्न युक्ता स्फोटकल्पना ॥२२६॥
विकर्षोत्कर्षकत्वेनानित्यः शब्दः सुखादिवत् ।
संबन्धोऽप्यर्थशब्दानां जन्यः स्याद् द्वित्वशब्दवत् ॥२२७॥
संबन्धत्वात् तथा वेदवाक्यं पुरुषनिर्मितम् ।
वाक्यत्वहेतुतो हर्ष-कालिदासादिवाक्यवत् ॥२२८॥
ताल्वादिस्थानसंभूतशब्दतः शब्दसंततिः ।
जायतेऽत्रान्तिमः शब्दः श्रौत्रोऽन्यो नित्यमेयकः ॥२२९॥
कर्मान्यत्वे सति ज्ञेया सामान्यैकाश्रयत्वतः ।
शब्दस्य गुणता रूपस्पर्शगन्धरसादिवत् ॥२३०॥
स त्रेधा भाग-संयोग-शब्दजत्वविभागतः ।
वंशादिदलभागोत्थ आद्यो भेर्यादिजोऽपरः ॥२३१॥
तृतीयस्तूक्त एवादावित्युक्तो गुणसंग्रहः ।
अन्तर्भावस्तु विज्ञेय इच्छादौ करुणादितः ॥२३२॥
चतुर्विंशतिरेवातो गुणा इति समञ्जसम् ।
अथाभिधीयते कर्म्मनिर्णयसंग्रहोऽधुना ॥२३३॥
पदार्थरत्नमञ्जूषाग्रन्थे कृष्णविनिर्म्मिते ।
पदार्थो गुणसंज्ञोऽयं समाप्तोऽतिप्रियः सताम् ॥२३४॥

——*——

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तृतीय-कर्माख्यपदार्थवर्णनम् ।

संयोग-भागयोः कर्माऽसमवायिनिमित्तकम् ।
मानं कर्म्मणि नास्तीति चेत् पश्य चलतीति धीः ॥२३५॥

मानं नन्वस्तु योगादिसंततिस्तद्धियः पदम् ।
नैतदेतेन संयुक्तं विभक्तं चात इत्यपि ॥२३६॥

प्रतियोगिनिरूप्यत्वात् तयोश्चलन-वाग्धियोः ।
प्रतियोगिनिरूप्यत्वं न कदापि प्रतीयते ॥२३७॥

तथा पिपीलिकायोगभागसंततिशालिनि ।
शाके चलनधीर्नैवोदयमासादयत्यलम् ॥२३८॥

तस्मात् कर्म्म पृथक् सिद्धं तच्च पञ्चविधं स्मृतम् ।
उत्क्षेपणं तथैवापक्षेपणाकुञ्चने परे ॥२३९॥

प्रसारणं गतिश्चेति तेषां लक्षणमीदृशम् ।
ऊर्ध्वदिग्योगहेतुः स्यादाद्यं चाधोदिशो युजेः ॥२४०॥

निमित्तमन्यदृजु नोऽग्रभागानां वियोगके ।
तद्देशैर्मूलदेशैश्च संयोगे दोरको यतः ॥२४१॥

कुटिलः स्यात् तृतीयं तु तद्विरुद्धं प्रसारणम् ।
अव्यवस्थितदिग्देशयोगाद्युत्पादि पञ्चमम् ॥२४२॥

मुशलोत्क्षेपणेच्छायां प्रयत्नः स्यात् ततः करे ।
यत्नापेक्षात्महस्तस्थयोगादुत्क्षेपणं भवेत् ॥२४३॥

(२४१) १. ऋजुनो द्रव्यस्याग्रभागानां तदाकाशदेशैर्वियोगे विभागे सति, तस्यैव द्रव्यस्याग्रभागानां मूलदेशैश्च संयोगे सति यतो दोरकः कुटिलः स्यात् तदाकुञ्चनं कर्म्मेत्यर्थः ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

तद्यत्नापेक्षमुशलहस्तयोगादुदेत्यनु ।
मुशलोत्क्षेपणं पूर्वयत्नेच्छोच्छेदने ततः ॥२४४॥
ततोऽपक्षेपणेच्छायां प्रयत्नस्तदपेक्षतः ।
करात्ममुशलोद्धस्तयोगद्वन्द्वात् समुद्भवेत् ॥२४५॥
अपक्षेपणकद्वन्द्वं युगपन्मुशले करे ।
रज्जोराकर्षणेच्छायां प्रयत्नस्तदपेक्षतः ॥२४६॥
हस्तात्मरज्जुहस्तस्थसंयोगद्वयतः करे ।
रज्जौ चाकुञ्चने स्यातामथ रज्जुप्रसारणे ॥२४७॥
इच्छायत्नस्ततः पाणिकर्माऽतो रज्जुहस्तयोः ।
संयोगो नोदनाख्यः स्यात् ततो रज्जुप्रसारणम् ॥२४८॥
उत्पद्यते जलादौ च विना यत्नादितो जनिः ।
गतेरुत्तरसंयोगाद् विनाशः सर्वकर्मणाम् ॥२४९॥
विनश्यद्द्रव्यनिष्ठस्याश्रयनाशत ईरितः ।
भ्रमपातप्रवेशादि त्वन्तर्भूतं गतौ ध्रुवम् ॥२५०॥
न जात्यन्तरता तेषां जातिसंकरदोषतः ।
कूपादौ वंशपत्रादेर्वेशभ्रमणपातधीः ॥२५१॥
जायते जातिभेदे तु जातिसंकर आपतेत् ।
तस्मात् पञ्चैव कर्माणीत्येतत् सम्यग् व्यवस्थितम् ॥२५२॥
पदार्थरत्नमञ्जूषाग्रन्थे कृष्णविनिर्मिते ।
पदार्थः कर्मसंज्ञोऽयं समाप्तोऽतिप्रियः सताम् ॥२५३॥

——:o:——

(२४४) १. उत्क्षेपणप्रयत्नापेक्षात् ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

चतुर्थ-सामान्याख्यपदार्थवर्णनम् ।

अनेकवृत्ति नित्यं यत् तत् सामान्यमुदाहृतम् ।
अतश्चापोह एव स्यादश्वत्वमिति चेन्मतम् ॥२५४॥
अनन्तत्वादनश्वानामग्रहेऽश्वत्वधीः कथम् ।
न शुक्लेऽश्वे न चाभावे, गृह्यते नाश्वता तथा ॥२५५॥
अश्वधीपरतन्त्रा वाऽनश्वधीस्तदधीनका ।
अश्वधीरिति दुर्वारमन्योन्याश्रयमापतेत् ॥२५६॥
नातो बौद्धमतापोहो जातिर्व्याडिमतं[1] वचः ।
सादृश्यं जातिरेष्टव्या जातिमूलं हि तद्यतः ॥२५७॥
भूयोऽवयवसामान्ययोगो जात्यन्तरस्य[1] यः ।
तत्सादृश्यमतोऽपोहसादृश्यान्यदवस्थितम् ॥२५८॥
सामान्यं तत्र मानं चानवृत्तप्रत्ययो भवेत् ।
पराऽपरभिदा द्वेधा तत्र सत्ता परं मतम् ॥२५९॥
अनुवृत्त्यैकहेतुत्वाद् भवेत् सामान्यमेव सा ।
प्रमाणग्राह्यतैवास्तु सत्ता न प्राक् प्रवर्त्तिता ॥२६०॥
मानस्यासत्त्वमेव स्यात् वस्तुनो नाप्यसत्यदः ।
प्रवर्त्तते तथा च स्यादन्योन्याश्रयता च ते ॥२६१॥
सति मानं प्रमाणं च सति सत्त्वमितीदृशी ।
अर्थक्रियापटुत्वेऽपि सत्त्वे दोषोऽयमेव ते ॥२६२॥
द्रव्यत्वादिपरं तच्च व्यावृत्तेरपि कारणम् ।
अतो विशेषसंज्ञामप्यास्कन्दति तदेतयोः ॥२६३॥

(२५७) १. पाणिनीयमतम् । | (२५८) १. पदार्थान्तरस्य ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

परतापरते भूयः स्वल्पार्थत्वान्मते मुनेः ।
तत्रैव जातिर्यस्मिन्न षट्कं स्याज्जातिबाधकम् ॥२६४॥
व्यक्त्यैक्यतुल्यते तद्वदनवस्थितिसंकरौ ।
संबन्धशून्यता रूपहानिरित्येष संग्रहः ॥२६५॥
जातिर्नाऽऽकाशता व्यक्तेरेकत्वाद् घट-कुंभते ।
न जाती व्यक्तितुल्यत्वादन्योन्यव्यभिचारिणोः ॥२६६॥
एकत्रस्थितिसंज्ञस्य संकरस्य प्रसंगतः ।
दण्डिता-खड्गिते न स्तो जाती नो जातिताऽपि नः ॥२६७॥
जातिः स्यादनवस्थानान्न चापि समवायता ।
संबन्धायभावतो नापि संमताऽन्त्यविशेषता ॥२६८॥
स्वरूपहानितो जातिः षडेते यत्र बाधकाः ।
तात्पर्यतः समालोच्यमाने सति मनीषिभिः ॥२६९॥
न संति; जातिः सैष्टव्या सा च नित्यैव संमता ।
विनाशहेत्वभावादित्येतत् सर्वं सुमंगलम् ॥२७०॥
पदार्थरत्नमञ्जूषाग्रन्थे कृष्णविनिर्मिते ।
सामान्याख्यः पदार्थोऽयं समाप्तोऽतिप्रियः सताम् ॥२७१॥

———*———

(२६४) १. कारित्वे ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

पञ्चम-विशेषाख्यपदार्थवर्णनम् ।

विशेषा हेतवोऽत्यन्तव्यावृत्तप्रत्ययोदये ।
निःसामान्यविशेषाश्च नित्यद्रव्याश्रयास्तथा ॥२७२॥
उष्ट्रादिभ्यो गवाश्वादौ व्यावृत्तप्रत्ययो यथा ।
गोत्वादिहेतुकस्तद्वत्तुल्याकृतिगुणादिके ॥२७३॥
व्यावृत्तप्रत्ययोऽण्वादौ प्रतिव्यक्ति यतो भवेत् ।
योगिनां ते विशेषाः स्युर्नन्वण्वात्मादिषु स्वतः ॥२७४॥
व्यावृत्तधीर्विशेषाणामिव किं नोररीकृता ।
तुल्यजात्यादिभाक्त्वान्न व्यावृत्तप्रत्ययोदयः ॥२७५॥
स्वतो द्रव्येषु जात्यादिहीनत्वात्तु विशेषधीः ।
विशेषेषु स्वतो युक्ताऽत एवान्त्या उदीरिताः ॥२७६॥
नित्याश्चाश्रयनाशादेर्नाशं हेतोरभावतः ।
इति सिद्धि समाभ्यागाद्विशेषाणां निरूपणम् ॥२७७॥
पदार्थरत्नञ्जूषाग्रन्थे कृष्णविनिर्मिते ।
विशेषाख्यः पदार्थोऽयं समाप्तोऽतिप्रियः सताम् ॥२७८॥

——*——

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

षष्ठ-समवायाख्यपदार्थवर्णनम् ।

संबन्धोऽयुतसिद्धानामिहधीहेतुरीरितः ।
समवायः पृथक्सिद्धिः संप्रोक्ताऽयुतसिद्धिका ॥२७९॥
नित्यानित्याश्रयत्वेन द्वेधा चासौ समीरिता ।
अन्योन्यपरिहारेण पृथगाश्रयतोदिता ॥२८०॥
अनित्यगाऽम्बुघटयोरिव नित्याऽऽश्रयस्थिता ।
पृथग् गमनयोग्यत्वं स्यादणु स्वान्तयोरिव ॥२८१॥
युतसिद्धिरियं प्रोक्ताऽयुतसिद्धिरतोऽन्यथा ।
एका तन्तुपटारूढा वियद्द्रव्यत्वगाऽपरा ॥२८२॥
इह तन्तुषु शुक्लत्वमितीह प्रत्ययो ध्रुवम् ।
संबन्धपूर्वको ज्ञेय इहधीत्वाद् यथोदके ॥२८३॥
कंजमित्येतदभ्युक्तं परिशेषानुमानकम् ।
प्रमाणं समवायोऽसौ नाशहेतोरभावतः ॥२८४॥
नित्यो लिङ्गाविशेषात् सः स्यादेकोऽनेकता पुनः ।
द्रव्यादिव्यञ्जकाधीना वृत्तिर्द्रव्यादिपञ्चके ॥२८५॥
नास्याद्रव्यत्वतो योगो नापि स्यात् समवायकः ।
अनवस्थासमासत्तेरतः स्वेनैव पञ्चसु ॥२८६॥
वृत्तिरिन्द्रियसंबन्धाभावान्नेन्द्रियगोचरः ।
अतो नित्यानुमेयः स्यात् समवाय इति स्थितम् ॥२८७॥
पदार्थः षड्विधो भाव इत्यदः कणभुङ् मतम् ।
अथाभिदध्महेऽभावपदार्थं संग्रहानुगम् ॥२८८॥
पदार्थरत्नमञ्जूषाग्रन्थे कृष्णविनिर्मिते ।
समवायः पदार्थोऽयं समाप्तोऽतिप्रियः सताम् ॥२८९॥

—•—

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

सप्तम-अभावाख्यपदार्थवर्णनम् ।

पदार्थं इतरोऽभावो नेतिधीशब्दगोचरः ।
प्रमाणं चाभ्यधाय्यस्मिन् स च ज्ञेयश्चतुर्विधः ॥२९०॥

प्रध्वंसः प्रागभावश्चान्योन्याभावस्तृतीयकः ।
अत्यन्ताभावकस्तुर्यो दण्डघाताद् घटादिषु ॥२९१॥

प्रध्वंसो जायते नित्यः स पटानुदयात्पुनः ।
प्रागभावस्त्वजन्यः स्याज्जनकाभावतः स च ॥२९२॥

अनित्यो घटजन्मादिनाशकारणसंभवात् ।
गोरश्वो न भवेदित्थमन्योन्याभाव उच्यते ॥२९३॥

अनादिनिधनोऽभीष्टोऽत्यन्ताभावो विशारदैः ।
वन्ध्यापुत्रो वियत्पुष्पं नरशृङ्गमितीदृशः ॥२९४॥

पदार्थाविति संप्रोक्तौ भावाभावौ सुविस्तरौ ।
अनयोस्तत्त्वविज्ञानान्मोक्षः संजायते नृणाम् ॥२९५॥

पदार्थरत्नमञ्जूषाग्रन्थे कृष्णविनिर्मिते ।
अभावाख्यः पदार्थोऽयं समाप्तोऽतिप्रियः सताम् ॥२९६॥

—*—

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

मोक्षस्वरूपवर्णनम् ।

ननु को नाम मोक्षोऽयं शुद्धधीसंततेर्ज्जनिम् ।
केचिदाहुः परे तस्या अपि च्छेदं परे पुनः ॥२९७॥
सततोर्ध्वंगतिं प्राहुः पुंप्रकृत्योर्विवेचनात् ।
औदासीन्यं परं पुंस ऊचुः कपिलसेविनः ॥२९८॥
परिणामविहीनात्मावस्थानं क्लेशसंक्षये ।
नित्यानन्दगुणव्यक्तिं मीमांसाकुशला विदुः ॥२९९॥
ब्रह्मांशकस्य जीवस्योपाधिनाशेंऽशिरूपताम् ।
केचिद् भवप्रवाहैकबीजाज्ञाननिवर्त्तनम् ॥३००॥
नित्यात्मरूपानन्दाभिव्यक्तिं वेदान्तिनो विदुः ।
नैषामेकतमोऽप्यत्र पक्षः फांटसमर्थनः ॥३०१॥
विषयोपप्लाभावे ज्ञानानुदयतोऽग्रिमः ।
न युक्तोऽपुरुषार्थत्वादितरोऽपि न शोभनः ॥३०२॥
स्वोच्छेदार्थी यतो नैव कश्चिदप्यस्ति बुद्धिमान् ।
परिच्छिन्नत्वतोऽनित्यः स्यादात्मा च तृतीयके ॥३०३॥
चतुर्थें मोक्षहेतूनामनुष्ठनं न संभवेत् ।
उदासीनत्वतः पुंसः प्रकृतेश्च जडत्वतः ॥३०४॥
नित्यानन्दगुणास्तित्वे मानाभावान्न पञ्चमः ।
षष्ठेंऽशांशित्वतो ब्रह्मानित्यमेव प्रसज्यते ॥३०५॥
सप्तमे ज्ञानहानिर्न सती द्वैतप्रसक्तितः ।
नासती ज्ञानवैयर्थ्यान्निह्यसज्जन्यते क्वचित् ॥३०६॥

(२९७) १. बौद्धाः ।
(२९८) १. सांख्याः ।
(३०१) १. अनायासकृतं 'फांट' मित्युच्यते ।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विरोधात्सदसत्त्वं न नाप्यनिर्वचनीयता ।
अनिर्वाच्यनिवृत्तित्वान्नापि स्यात्पञ्चमी विधा ॥३०७॥
मानाभावादथात्मैव निवृत्तिरिति चेन्न तत् ।
तस्य नित्यत्वतो ज्ञानवैयर्थ्यस्य प्रसंगतः ॥३०८॥
सुखस्यानुभवोऽभीष्टः पुरुषार्थः सुखं न तु ।
सुखं च दुःखयोग्ये च तस्मान्नादः समञ्जसम् ॥३०९॥
अतो त्रिवेकिनः पुंसो विषये दोषदर्शनात् ।
विरक्तस्य निषिद्धादित्यागे नित्यादिसेवनात् ॥३१०॥
निर्वर्त्तकस्य धर्मस्योदयनेन समुच्चितात् ।
ज्ञानाच्छरीरबुध्यादिनवात्मगुणसंक्षये ॥३११॥
दग्धेन्धनाग्निवत् पुंसोऽवस्थानं मोक्ष उत्तमः ।
अत्यन्तोच्छेदिनी दुःखसंततिः संततित्वतः ॥३१२॥
दीपसंततिवन्मानमेतन्मोक्षे समीरितम् ।
अशरीरं वा वसंतं न प्रियेत्यागमस्तथा ॥३१३॥
तस्मिन्मानं न सिद्धेऽर्थे वचसो मानतेष्यते ।
कार्यान्वितार्थवाचित्वात् पदानामिति चेन्न तत् ॥३१४॥
कार्यशब्देष्वनैकान्त्यान्नहि कार्यपदं वदेत् ।
कार्यान्तरान्वितं स्वार्थं कार्यद्वितयहानितः ॥३१५॥
एकवाक्येन चाप्यस्यान्वितमात्राभिधायिता ।
गौरवात् स्वार्थमेवातोऽभिदध्यादखिलं पदम् ॥३१६॥
आकांक्षादित्रयोपेताः पदार्थाः प्रतिपादकाः ।
वाक्यार्थस्येति सिद्धेयं मोक्षे शब्दस्य मानता ॥३१७॥

*

तस्मादकस्मान्तरपञ्चवक्त्रपादाम्बुजद्वन्द्वसमाधिभाजाम् ।
वैराग्यविज्ञानसमृद्धधर्मजुषां भवेद् दुःखनिवृत्तिरग्र्या ॥३१८॥

——*——

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

विद्यागर्वाद्रिरूढातिचपलरसनाग्रोग्रचित्तान्तराल-
प्रोद्यत्पाषण्डदण्डार्दितजनचयदुर्वादिपञ्चाननेन ।
मञ्जूषा षट्पदार्थाऽमलमणिगणसंराजिता निर्मितेयं
कृष्णेनागर्व्वविद्वज्जनचरणयुगाम्भोजसेवारतेन ॥३१९॥

पदार्थरत्नमञ्जूषाग्रन्थे कृष्णविनिर्मिते ।
निर्दोषो मोक्षवादोऽयं समाप्तोऽतिप्रियः सताम् ॥३२०॥

॥ इति श्रीमहाराष्ट्रदेश्यश्रीकृष्णभट्टविरचिता पदार्थरत्नमञ्जूषा समाप्ता ॥

निःशेषक्षितिपालमौलिविलसद्भास्वन्मणिश्रेणिसद्
दीपोद्दीपितपादपद्मयुगल श्रीरेणुकासेविनि ।
पृथ्वीं शासति शार्ङ्गधारितनुसंभूतेऽर्ज्जुने राजनि
ग्रन्थोऽयं समकारि कृष्णकृतिना श्रीरेणुकाप्रीतये ॥३२१॥

॥ श्रीरस्तु शुभं भवतु ॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

परिशिष्टम्

पदार्थरत्नमञ्जूषायां परत्वविनाशकारणानामभिधानमात्रमेव येन क्रमेणोक्तं तेन प्रकारेणायमङ्कव्यवहारः।

(१) अनेन प्रकारेण द्रव्यविनाशादेव विनाशः।

पिंडावयवे कर्म —१	
अवयवांतरे विभागः —२	अपेक्षावुद्धिः —१
पिंडारंभक संयोगनाशः—३	परत्वस्योत्पत्तिः —२
पिंडविनाशः —४	सामान्यवुद्धेरुत्पत्तिः—३
तन्निष्ठपरविनाशः —५	

(२) अनेनप्रकारेण संयोगविनाशादेव परत्वस्य विनाशः।

परत्वाधारे पिंडे कर्म—१	अपेक्षावुद्धिः —१
दिक् पिंडविभागः —२	परत्वस्योत्पत्तिः —२
दिक् पिंड संयोगविनाशः—३	सामान्यवुद्धेरुत्पत्तिः—३
परत्वस्य विनाशः—४	

(३) अनेन प्रकारेण निमित्तविनाशादेव परत्वस्य विनाशः।

अपेक्षावुद्धिः —१	गुणवुद्धेरुत्पद्यमानता—३	अपेक्षावुद्धेविनश्यता —३
परत्वस्योत्पत्तिः —२	गुणस्य विनश्यता —४	गुणबुद्धेरुत्पत्तिः —४
सामान्यवुद्धेरुत्पत्तिः —३	द्रव्यवुद्धेरुत्पत्तिः —५	द्रव्यवुद्धेरुत्पद्यमानता—५
अपेक्षावुद्धेर्विनाशः —४		
ततश्च परत्वगुणविनाशः —५		

---

(४) एतत्प्रकारेण समवायिकारणनिमित्तकारणासमवायिकारणानां युगपन्नाशात् परत्वस्य विनाशः।

पिंडावयवे कर्म्म —१	अपेक्षावुद्धिः —१	पिंडे कर्म।
अवयवांतरे विभागः —२	परत्वस्योत्पत्तिः —२	दिक्पिंडविभा:।
पिंडारंभकसंयोगनाशः —३	सामान्यवुद्धेरुत्पत्तिः —३	दिक्पिंडसंयोगविनाशः।
पिंडविनाशः —४	अपेक्षावुद्धेर्विनाशः —४	परत्वस्य विनाशः।
पिंडनिष्ठपरत्वविनाशः—५	ततश्च परत्वस्यविनाशः —५	

(५) एवं द्रव्यापेक्षाबुद्ध्योर्युगपद्विनाशात् परत्वस्य विनाशः।

पिंडावयवे कर्म —१	अपेक्षा वुद्धिः।
अवयवांतरे विभागः —२	परत्वस्य योत्पत्तिः।
पिंडारंभकसंयोगनाशः —३	सामान्यवुद्धेरुत्पत्तिः।
पिंडविनाशः —४	अपेक्षावुद्धेर्विनाशः।
पिंडनिष्ठपरत्वविनाशः —५	ततश्च परत्वनाशः।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

(६) अनेन प्रकारेण द्रव्यसंयोगयोर्नाशात् युगपत् परत्वगुणस्य विनाश इति।

परत्वाधारावयवे कर्म	—१	पिंडेकर्म	—१	अपेक्षाबुद्धिः	—१
अवयवांतराद्विभागः	—२	दिक् पिंड विभागः	—२	परत्वस्य चोत्पत्तिः	—२
पिंडारंभक संयोगनाशः	—३	दिक् पिंड संयोगनाशः	—३	सामान्यबुद्धेरुत्पत्तिः	—३
पिंडविनाशः	—४	परत्वविनाश	—४	अपेक्षाबुद्धेर्विनाशः	—४
पिंडनिष्ठपरत्वविनाशः	—५				

(७) अनेन प्रकारेणापेक्षाबुद्धिसंयोगयोः युगपद्विनाशात् परत्वस्य विनाश इति ज्ञेयम्।

अपेक्षाबुद्धिः	—१	परत्वाधारे कर्मोपरि (प ?) द्यते	—१
परत्वस्य चोत्पत्तिः	—२	दिक् पिंड विभागः	—२
सामान्यबुद्धेरुत्पत्तिः	—३	दिक् पिंडसंयोगविनाशः	—३
अपेक्षाबुद्धेर्विनाशः	—४	परत्वस्य विनाशः	—४
(ततश्च परत्व) विनाशः	—५		

॥ इति शुभम् ॥

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

॥ श्रीः ॥

पदार्थरत्नमञ्जूषायाः श्लोकानुक्रमणिका

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

राजस्थान पुरातन ग्रन्थ-माला

प्रधान सम्पादक—पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य

प्रकाशित ग्रन्थ

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश

१. प्रमाणमंजरी, तार्किकचूडामणि सर्वदेवाचार्यकृत, सम्पादक – मीमांसान्यायकेसरी पं० पट्टाभिरामशास्त्री, विद्यासागर। मूल्य—६.००

२. यन्त्रराजरचना, महाराजा सवाईजयसिंह-कारित। सम्पादक—स्व० पं० केदारनाथ ज्योतिर्विद्, जयपुर। मूल्य—१.७५

३. महर्षिकुलवैभवम्, स्व० पं० मधुसूदनओझा-प्रणीत, भाग १, सम्पादक—म० म० पं० गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी। मूल्य—१०.७५

४. महर्षिकुलवैभवम्, स्व० पं० मधुसूदन ओझा प्रणीत. भाग , मूलमात्रम् सम्पादक—पं० श्रीप्रद्युम्न ओझा। मूल्य—४.००

५. तर्कसंग्रह, अन्नंभट्टकृत, सम्पादक—डॉ. जितेन्द्र जेटली, एम.ए., पी-एच. डी., मूल्य—३.००

६. कारकसंबंधोद्योत, पं० रभसनन्दीकृत, सम्पादक—डॉ० हरिप्रसाद शास्त्री, एम. ए., पी-एच. डी.। मूल्य—१.७५

७. वृत्तिदीपिका, मौनिकृष्णभट्टकृत, सम्पादक—स्व.पं. पुरुषोत्तमशर्मा चतुर्वेदी, साहित्याचार्य। मूल्य—२.००

८. शब्दरत्नप्रदीप, अज्ञातकर्तृक, सम्पादक—डॉ. हरिप्रसाद शास्त्री, एम. ए, पी-एच.डी.। मूल्य—२.००

९. कृष्णगीति, कवि सोमनाथविरचित, सम्पादिका—डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्। मूल्य—१.७५

१०. नृत्तसंग्रह, अज्ञातकर्तृक, सम्पादिका—डॉ प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्। मूल्य—१.७५

११. शृङ्गारहारावली, श्रीहर्षकवि-रचित, सम्पादिका—डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच.डी., डी.लिट्। मूल्य—२.७५

१२. राजविनोदमहाकाव्य, महाकवि उदयराजप्रणीत, सम्पादक—पं० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम. ए., उपसञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। मूल्य—२.२५

१३. चक्रपाणिविजय महाकाव्य, भट्टलक्ष्मीधरविरचित, सम्पादक—पं० श्रीकेशवराम काशीराम शास्त्री। मूल्य—३.५०

१४. नृत्यरत्नकोश (प्रथम भाग), महाराणा कुम्भकर्णकृत, सम्पादक—प्रो. रसिकलाल छोटालाल पारिख तथा डॉ० प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्। मूल्य—३.७५

१५. उक्तिरत्नाकर, साधसुन्दरगणिविरचित, सम्पादक—पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी, पुरातत्त्वाचार्य, सम्मान्य संचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। मूल्य—४.७५

१६. दुर्गापुष्पाञ्जलि, म०म० पं० दुर्गाप्रसादद्विवेदिकृत, सम्पादक—पं० श्रीगङ्गाधर द्विवेदी, साहित्याचार्य। मूल्य—४.२५

१७. कर्णकुतूहल, महाकवि भोलानाथविरचित, इन्हीं कविवर की अपर संस्कृत कृति श्रीकृष्णलीलामृत सहित, सम्पादक—पं० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम. ए., मूल्य—१.५०

१८. ईश्वरविलासमहाकाव्य, कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्टविरचित, सम्पादक—भट्ट श्रीमथुरानाथशास्त्री, साहित्याचार्य, जयपुर। स्व. पी. के. गोडे द्वारा अंग्रेजी में प्रस्तावना सहित। मूल्य—११.५०

१९. रसदीर्घिका, कविविद्यारामप्रणीत, सम्पादक—पं० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम.ए. मूल्य—२.००

२०. पद्यमुक्तावली, कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्टविरचित, सम्पादक—भट्ट श्रीमथुरानाथ शास्त्री, साहित्याचार्य। मूल्य—४.००

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

२१ काव्यप्रकाशसंकेत, भाग १ भट्टसोमेश्वरकृत, सम्पा०—श्रीरसिकलाल छो० पारीख, अंग्रेजी में विस्तृत प्रस्तावना एवं परिशिष्ट सहित मूल्य—१२.००

२२. काव्यप्रकाशसंकेत, भाग २ भट्टसोमेश्वरकृत, सम्पा०—श्रीरसिकलाल छो० पारीख, मूल्य—८.२५

२३. वस्तुरत्नकोष, अज्ञातकर्तृक, सम्पा०—डॉ० प्रियबाला शाह। मूल्य—४-००

२४. दशकण्ठवधम्, पं० दुर्गाप्रसादद्विवेदिकृत, सम्पा०—पं० श्रीगङ्गाधर द्विवेदी। मूल्य—४.००

२५. श्री भुवनेश्वरीमहास्तोत्र, सभाष्य, पृथ्वीधराचार्यविरचित, कवि पद्मनाभकृत भाष्य-सहित पूजापञ्चाङ्गादिसंवलित। सम्पा०—पं. श्रीगोपालनारायण बहुरा। मूल्य—३.७५

२६. रत्नपरीक्षादि-सप्त ग्रन्थ-संग्रह, ठक्कुर फेरू विरचित, संशोधक—पद्मश्री मुनि जिन-विजय, पुरातत्त्वाचार्य। मूल्य—६.२५

२७. स्वयंभूछन्द, महाकवि स्वयंभूकृत, सम्पा० प्रो० एच. डी. वेलणकर। विस्तृत भूमिका (अंग्रेजी में) एवं परिशिष्टादि सहित मूल्य—७.७५

२८. वृत्तजातिसमुच्चय कवि विरहाङ्करचित, ,, ,, ,, मूल्य—५.२५

२९. कविदर्पण, अज्ञातकर्तृक, ,, ,, ,, मूल्य—६.००

३०. कर्णामृतप्रपा, भट्ट सोमेश्वर कृत सम्पा०—पद्मश्री मुनि जिनविजय। मूल्य—२.२५

३१. त्रिपुराभारती लघुस्तव, लघुपण्डित विरचित, सम्पा० ,, मूल्य—३.२५

३२. पदार्थरत्नमञ्जूषा, पं० कृष्ण मिश्र विरचित, सम्पा० ,, मूल्य—३.७५

प्रेसों में छप रहे ग्रंथ

संस्कृत प्राकृत

१. शकुनप्रदीप, लावण्यशर्मरचित, सम्पा०—पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय।

२. बालशिक्षाव्याकरण ठक्कुर संग्रामसिंहरचित, सम्पा०—पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय।

३. नन्दोपाख्यान, अज्ञातकर्तृक, सम्पा०—डॉ० बी.जे. सांडेसरा।

४. चान्द्रव्याकरण, आचार्य चन्द्रगोमिविरचित, सम्पा०—श्री बी. डी. दोशी।

५. प्राकृतानन्द, रघुनाथकवि-रचित, सम्पा०—पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय।

६. कविकौस्तुभ, पं० रघुनाथरचित, सम्पा०—श्री एम. एन. गोरे।

७. एकाक्षर नाममाला—सम्पा०—मुनि श्री रमणिकविजय।

८. नृत्यरत्नकोश, भाग २, महाराणा कुंभकर्णप्रणीत, सम्पा०—श्री आर. सी. पारिख और डॉ. प्रियबाला शाह।

१०. इन्द्रप्रस्थप्रबन्ध, सम्पा०—डॉ. दशरथ शर्मा।

११. हमीरमहाकाव्यम्, नयचन्द्रसूरिकृत, सम्पा०—पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय।

१२. वासवदत्ता, सुबन्धुकृत, सम्पा०—डॉ० जयदेव मोहनलाल शुक्ल।

१३. वृत्तमुक्तावली, कविकलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट कृत; सं० पं० भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री।

१४. आगमरहस्य, स्व० पं० सरयूप्रसादजी द्विवेदी कृत, सम्पा०—प्रो० गङ्गाधर द्विवेदी।

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy

CC-0. RORI. Digitized by Sri Muthulakshmi Research Academy